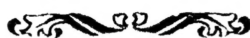
योग साधन माला. पुष्प ५



श्री महर्षि पातञ्जल प्रणीत

योग 'दर्शन' शास्त्र।



भाषानुवाद

अनुवादक और प्रकाशक—

श्री स्वामी अभयानन्द सरस्वती।

योगमण्डल 'गुरुकुल'

काशी।

शिवशंकर मिश्र द्वारा, भारत-प्रेस,

काशी में मुद्रित।

सम्वत् १९८० वै०

मूल्य ॥=) आ०

* ओ३म् तत्सत् *

भूमिका



ग आदि समस्त विद्याओं के भण्डार वेद भगवान् हैं जो साक्षात् परम गुरु परमात्मा का सच्चा ज्ञान है, इसलिये योग के आदि गुरु और प्रथम उपदेष्टा परमात्मा हैं जैसा स्वयं वेदमंत्र में लिखा है।

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परितस्थुषः रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ऋ० अ० १। अ० १। व० ११। मं० १॥

अर्थ—जो उपासक (ब्रध्नं) बड़े को (अरुषं) हिंसा रहित (परितस्थुषः चरन्तं) मनुष्यों के हृदय को जाननेहारे परमेश्वर को (युञ्जन्ति) योग द्वारा अपने आत्मा में जोड़ते हैं (रोचना) प्रकाश द्वारा (दिवि) सूर्य्य के प्रकाश में (रोचन्ते) प्रकाशित होते हैं। इसी आशय को लेकर योगीराज पतञ्जलि भगवान् लिखते हैं:—

सएष पूर्वेषामपि गुरुः काले नानवच्छेदात् ॥ यो० पा० १ सू० २६॥ वह परमेश्वर पूर्व ऋषियोंका भी गुरु है क्योंकि वह कालचक्र से रहित है। अस्तु, पहले ही पहल परमात्मा ने वेदों के द्वारा सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों (अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा) द्वारा योग का उपदेश किया। श्री ब्रह्मा से अन्य ऋषि मुनियों ने योग विद्या सीखी। उनसे महर्षि पतञ्जलिने इसको पढ़कर और पूर्ण अभ्यास करके योगदर्शन नामसे प्रसिद्ध किया: जो वर्तमान सर्व ग्रन्थों में मान्य माना जाता है। पतञ्जलि मुनिकी प्रशंसामें किसी कविने ठीक कहा है कि:—

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि ॥

अर्थ—जिस पतञ्जलि मुनिने योगशास्त्र के मानसिक व्याकरण शास्त्र से वाचिक और वैद्यक शास्त्र से शारीरि (एवं तीनों शास्त्रों से कायिक-वाचिक-मानसिक) मल दूर किया उसको हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूं।

इनके योगदर्शन में केवल १९४ सूत्र और चार पाद निम्न-प्रकार हैं:—

(१) समाधिपाद—जिसमें समस्त पुस्तक का सार सूत्र रूप में ज्ञानात्मक (Theoretical) है, इसमें ५१ सूत्र हैं।

* ओ३म् *

॥ अथ योग दर्शन भाषानुवादः ॥

अथ योगानुशासनम् ॥१॥

अब योग शास्त्र (आरम्भ करते हैं) ॥१॥

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः ॥२॥

चित्तकी वृत्तियों का रोकना योग है ॥२॥

तदाद्रष्टुः स्वरूपे ऽवस्थानम् ॥३॥

तब देखने वाले जीवात्माकी अपने स्वाभाविक चैतन्य रूपमें स्थिति हो जाती है ॥३॥

वृत्ति सारूप्य मितरत्र ॥४॥

अन्य अवस्थामें वृत्तियोंके समान रूप होता है ॥४॥

वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाऽक्लिष्टाः ॥५॥

वृत्तियाँ पाँच है क्लिष्ट और अक्लिष्टसे दो प्रकारकी हैं। तात्पर्य यह हैकि "जिन वृत्तियोंके उदय होनेसे पुरुषके भावी जन्मका आरम्भ होता है उनको क्लिष्ट और जिनके उदय होने से मनुष्यके भावी जन्मका उदय नहीं होता अर्थात् जिनसे पुरुष मुक्तावस्थाको प्राप्त हो जाता है उनको अक्लिष्ट कहते हैं" ॥५॥

१ प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रास्मृतयः ॥६॥

प्रमाण वृत्ति, २ विपर्ययवृत्ति, ३ विकल्पवृत्ति, ४ निद्रावृत्ति और ५ स्मृतिवृत्ति हैं ॥६॥

तत्र प्रत्यक्षानुमानाऽऽगमाः प्रमाणानि ॥७॥

उन (पांच) मेंसे प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम [वेद व वेदानुकूल ग्रंथ] (ये तीन) प्रमाण वृत्तियाँ हैं ॥७॥

विपर्ययो मिथ्या ज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम् ॥८॥

वस्तुके स्वरूपसे भिन्न स्वरूपमें ठहरने वाला (अन्यमें अन्य बुद्धिरूप) मिथ्या ज्ञान 'विपर्यय' है। जैसे—रज्जूमें सर्प, सीपमें मोती इत्यादि ॥८॥

शब्द ज्ञानानुपाती वस्तु शून्यो विकल्पः ॥ ९ ॥

शब्द ज्ञान (मात्र) पर गिरने वाला (परन्तु) वस्तुसे शून्य विकल्प कहाता है। तात्पर्यः-जो ज्ञान वस्तु नाम विषयसे रहित हो अर्थात् जिस ज्ञानका विषय कुछ नहो और शब्द ज्ञानसे उत्पन्न होजाय उसको विपर्यय कहते हैं। जैसे, वन्ध्या का पुत्र, आकाश के फूल इत्यादि ॥९॥

अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा ॥१०॥

अभावकी प्रतीतिका सहारा लेने वाली वृत्तिनिद्रा है। तात्पर्य यह हुआ कि "जिस समय बुद्धिमें तमोगुण आविर्भूत होकर सत्वगुण, रजोगुण तथा वाह्येन्द्रियोंको आच्छादन कर लेता है उस समय बाह्य अर्थोंके साथ सम्बन्ध न रहनेके कारण उनको विषय करने वाली सम्पूर्ण वृत्तियोंके निवृत्ति हो जाने से केवल तमोगुणको विषय करने वालीजो चित्तवृत्ति उत्पन्न होती है उसको निद्रा कहते हैं" ॥१०॥

अनुभूत विषयाऽसम्प्रमोषः स्मृतिः॥११॥

पूर्व अनुभव किये हुए विषयके संस्कारसे उसी विषयमें होने वाले ज्ञानका नाम स्मृति है। अर्थात् पूर्व प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे जितने अर्थका अनुभव हुआ है उतनेही अर्थको विषय करनेवाली संस्कारजन्य चित्तवृत्तिका नाम स्मृति है। [अब चित्तवृत्तियोंकेनिरोध (रोकने) का उपाय कहते हैं] ॥११॥

अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः ॥१२॥

(बार २ रोकने के) अभ्यास और वैराग्यसे उन (चित्त वृत्तियों) का निरोध होता है ॥१२॥

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः ॥१३॥

उन (अभ्यास वैराग्य, दोनोंमें से ठहरावका यत्न करना अभ्यास कहाता है ॥ १३ ॥

सतु दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्कारा सेवितोदृढभूमिः ॥ १४॥

और वह दीर्घकाल, निरन्तर तथा ब्रह्मचर्य आदिसे अनुष्ठान किया हुआ दृढ़ भूमि हो जाता है। "दीर्घकाल"का तात्पर्य मरण पर्यन्तका है और "नैरन्तर्य" पदका अर्थ सुषुप्ति पर्यन्त भी त्रुटिका न होना और "सत्कार"पदका अर्थ तप, ब्रह्मचर्य, श्रद्धा आदि हैं ॥ १४॥

दृष्टाऽनुश्रविक विषय वितृष्णस्यवशीकार संज्ञा वैराग्यम्॥ १५॥

देखे और (शास्त्र) से सुने विषयोंकी तृष्णासे रहित (चित्तका) वशीकार वैराग्य है। अर्थात् अन्न पान मैथुनादि सांसारिक और मरणानन्तर अन्य जन्मों, अन्य लोकों तथा अन्य योनियोंमें शास्त्रानुसार मिलने वाले पारलौकिक विषयों में से उनकी असारता जानकर चित्तका हटाना वैराग्य कहाता है। जब ज्ञान बढ़ता है तो जो विषय सुखदायक जान पड़ते थे वे फिर दुःखदायक तथा दुःख रूपही दीखने लगते हैं और इस प्रकार विषयोंमें दोष दीखनेसे उनका राग जाता रहता और वैराग्य उत्पन्न होने लगता है। जैसा कि सांख्यमें कहा है कि "नदृष्टात्तत्सिद्धि निवृत्तेप्यनु वृत्ति दर्शनात्" मनुष्यके आध्यात्मिकादि तीन प्रकारके दुःखोंकी निवृत्ति रूप सिद्धि सांसारिक दृष्ट पदार्थोंसे नहीं हो सकती, क्योंकि उनसे दुःख निवृत्तिही तत्काल पुनः दुःखकी अनुवृत्ति देखते हैं ॥ १५ ॥

तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् ॥ १६ ॥

विवेक ज्ञानसे सत्वादि गुणोंमें होने वाली इच्छाकी निवृत्तिको पर वैराग्य कहते हैं ॥ १६ ॥

वितर्क विचारा नन्दाऽस्मिता रूपा नुगमात्संप्रज्ञातः ॥१७॥

वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मिताके रूपको क्रमपू-

र्वक पानेसे संप्रज्ञात (समाधि वा योग होता है : तात्पर्य यह है कि किसी स्थूल पदार्थमें चित्त लगाना वितर्क, सूक्ष्म इन्द्रियातीत विषयमें मन लगाना विचार, हर्ष मनाना आनन्द और "मैं एक आत्मा देहादिसे भिन्न हूं" इसमें मन लगाना अस्मिता कहाती है ॥ १८ ॥

विरामप्रत्ययाऽभ्यास पूर्वः संस्कार शेषोऽन्यः ॥ १८ ॥

जिसमें पूर्व विराम प्रत्यय (चित्त वृत्तियोंके अवसान मात्र) का अभ्यास करते २ संस्कार मात्र शेष रह जाते हैं वह अन्य (दूसरा असंप्रज्ञात) योग (समाधि) है। अवसानका अर्थ विराम, समाप्ति, आखीर, हद है अर्थात् जिसमें समस्त चित्तवृत्ति अस्तको प्राप्त हो जाती है, ऐसे प्रत्यय (प्रतीति वा ज्ञान) का बार बार अभ्यास करना चाहिये। यह अभ्यास परम वैराग्यसे होता है ॥ १८ ॥

भव प्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम् ॥ १९ ॥

जो देह छोड़ देते और जो प्रकृतिमें लयको प्राप्त करते हैं उनको "भवप्रत्यय" नाम (असंप्रज्ञात समाधि) सिद्ध होता है। तात्पर्य यह है कि "मनुष्य देहको त्यागकर जो विदेहत्वको प्राप्त हैं, भवप्रत्यय (भव = जन्मका प्रत्यय = ज्ञान मात्र जिनमें रह गया है, यह कि "जन्मथा" यह तो) विदेहोंको प्राप्त होता है, जबतक देह है, तबतक नहीं प्राप्त होता। दूसरे जिन्होंने प्रकृतिमें चित्तका लय कर दिया हो उन्हें भी "भवप्रत्यय" समाधि सिद्ध हो जाता है और जबतक चित्त अपने अधिकार (वश) में रहा प्रकृतिमें लीन रहा तबतक समाधि बना रहता है। हां, जब चित्त अपने अधिकारसे निकलता है, तब वह समाधि खुल जाता है। ये दोनों प्रकारके पुरुष (विदेह और प्रकृतिलय) कैवल्य की तरह अनुभव करने लगते हैं। ऐसा व्यास भाष्यका मत है ॥ १९ ॥

श्रद्धावीर्यस्मृति समाधि प्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥ २० ॥

अन्यों (विदेहों और प्रकृतिलयोंसे भिन्नों) को श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञापूर्वक (उपाय प्रत्यय नामक दूसरा "असंप्रज्ञात" योग) होता है। तात्पर्य—प्रकृति पुरुषका विवेक मोक्षका कारण है, उस विवेक का साधन योग मुझको प्राप्त हो, इस प्रकारकी इच्छासे लोक तथा परलोकके विषय तृष्णा रहित पुरुषकी योगमें होने वाली रुचिको "श्रद्धा" कहते हैं। फिर श्रद्धा जो कि माताके समान भलाई करने वाली है, योगी की रक्षा करती है, उस श्रद्धासे युक्त विवेकार्थी योगीको "वीर्य" वह बल उत्पन्न हो जाता है, जिससे वह अगले उपायोंके करने को समर्थ हो जावे, तब वीर्यवान् योगीको स्मृति उपस्थित होती है, स्मृति (स्मरणशक्ति उपस्थित होनेपर चित्त शान्त व्याकुलता रहित हो जाता है, चित्तके समाधि=साधनसे प्रज्ञा=विवेक (कि मैं क्या हूं जगत् क्या है, ईश्वर क्या है, इत्यादि भेद) खुल जाता है, जिससे वह वस्तुको ठीक २ यथावत् जानने लगता है। इस प्रकार होनेसे भी वैराग्य हो जाता है और 'असंप्रज्ञात' योगको प्राप्त हो जाता है। इस प्रकारके योगी ३ तीन प्रकारके होते हैं। १ मृदुपाय, २ मध्योपाय, और ३ अधिमात्रोपाय ॥ २० ॥

तीव्र संवेगानामासन्नः ॥ २१ ॥

तीव्र वैराग्य वाले योगियोंको शीघ्र समाधि तथा उसके फल कैवल्यका लाभ होता है। "मृदुपायके भी तीन भेद हैं १ मृदुसंवेग, २ मध्यसंवेग, ३ तीव्रसंवेग। अर्थात् जो योगी अभ्यास और वैराग्य तथा श्रद्धा आदिमें तीव्रता तेजी और भले प्रकार वेग पूर्वक प्रवृत्त होता है, उसको शीघ्र योग समाधि सिद्ध होता है। ऐसेही ३ में से प्रत्येकके तीन २ भेद करके सब ९ भेद हो जाते हैं ॥ २१ ॥

मृदुमध्याधिमात्रत्वा त्ततोऽपि विशेषः ॥ २२ ॥

(तीव्रसंवेगके भी) १ मृदु, २ मध्य, और ३ अधिमात्र

होनेसे उसे भी विशेष (शीघ्रतर और शीघ्रतम योग प्राप्त होता) है। तीव्र संवेगके भी मृदु, मध्य और अधिमात्र भेद से तीन प्रकार हैं, जिनमे उत्तरोत्तर योग आसन्न = समीप, आसन्नतर = बहुत समीप और आसन्नतम = बहुत ही समीप हो जाता है॥२२॥

ईश्वर प्रणिधानाद्वा ॥ २३ ॥

अथवा ईश्वरके भक्ति विशेषसे (समाधि अति ही समीप हो जाता है) ॥२३ ॥

क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ॥२४॥

क्लेश कर्म, विपाक (कर्मफल) और आशय (कर्मफल वासनाओं) से रहित जो पुरुष विशेष ह, उसको ईश्वर कहते हैं ॥ २४ ॥

तत्र निरतिशयंसर्वज्ञवीजम् ॥ २५ ॥

उस ईश्वर में सबसे अधिक सर्वज्ञताका कारण ज्ञानही प्रमाण है ॥ २५ ॥

पूर्वेसामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात ॥ २६ ॥

वह ईश्वर पूर्वजोंका भी गुरु है क्योंकि कालसे नहीं कटता ॥ २६ ॥

तस्यवाचकः प्रणवः ॥ २७ ॥

उस ईश्वरका नाम प्रणव 'ओ३म्' है ॥ २७ ॥

तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥ २८ ॥

उस (ओ३म्) का जप और उसके वाच्य ईश्वरके पुनः २ चिन्तन करनेको प्रणिधान कहते हैं। इसीको भक्ति विशेष तथा उपासना भी कहते हैं। इस विषयमें भाष्यकार इस प्रकार कथन करते हैं कि:—

स्वाध्यायाद्योगमासीत योगा त्स्वाध्यायमामनेत् ।
स्वाध्याय योग सम्पत्या परमात्मा प्रकाशते ॥

अर्थ—स्वाध्याय ओंकार जपके अनन्तर योग अर्थात् समाधिका अभ्यास करे और समाधिके अनन्तर ओंकारका

जप करे क्योंकि ओंकार के जप तथा समाधिके अभ्यास से परमात्माका प्रकाश होता है ॥ २८ ॥

ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ॥ २९ ॥

उस (ईश्वर प्रणिधान) से पुरुषका साक्षात्कार और उसके साधन योगमें होनवाले विघ्नोंकी निवृत्ति होती है । अर्थात् इस क्रियासे प्रकृति तथा प्राकृत पदार्थोंसे भिन्न परमात्माके यथार्थ स्वरूपका साक्षात्कार होता है ॥ २९ ॥

व्याधिस्त्यान संशयप्रमादालस्याविरति भ्रान्ति दर्शना लब्ध भूमिकत्वा न वस्थितत्वानि चित्त विक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥ ३० ॥

व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्ति दर्शन, अलब्धभूमिकत्व, अनवस्थितत्व यह नव चित्तको विक्षिप्त चञ्चल करते हैं, अतएव यह योगमें विघ्न हैं । भावार्थ—१ व्याधि ज्वरादिरोग, २ स्त्यान कर्म करनेकी अशक्ति, ३ संशय साधनमें द्विविधा, ४ प्रमाद योगाङ्गोंके अनुष्ठानमें ढीलापन, ५ आलस्य देह और चित्तका भारीपन, ६ अविरति विषयोंमें प्रीति, ७ भ्रान्तिदर्शन गुरु उपदेशसे ज्ञानहुए योगाङ्गोंको योगाङ्ग न समझना, योगाङ्गोंका अनुष्ठान करके भी मधुमती आदि योगभूमियों को न प्राप्त होना, और ९ अनवस्थितत्व उक्तभूमियोंको प्राप्त होनेपर चित्तके स्थिर न रहनेका नाम है । येही ९ योगमल, चित्त विक्षेप और अन्तराय विघ्न भी कहाते हैं ॥ ३० ॥

दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासाविक्षेपसहभुवः ॥ ३१ ॥

दुःख, दौर्मनस्य, अङ्गमेजयत्व, श्वास, और प्रश्वास ये विक्षेपोंके साथ २ होनेवाले पाँच विघ्न हैं । अर्थात् आध्यात्मिक, अधिभौतिक और आधिदैविक भेदसे तीनों तापोंको, जो बुरे लगते हैं और जिनसे सब भागते हैं 'दुःख' कहते हैं । इच्छा पूरी न होनेसे जो चित्तमें क्षोभ होता है उसको दौर्मनस्य कहते हैं । आसन और मनके स्थिर न होनेसे देहका न सधना (हिलना) अङ्गमेजयत्व है । बिना पूरक वा रेचक प्राणायामके

अपने आप बाहरके वायुका नासिकाके छिद्रों द्वारा भीतर आना श्वास और फिर बाहर निकलना प्रश्वास कहाता है। विक्षिप्त चित्तवालेको व्याधि आदि ६ योग मलोंके साथ ये उनके साथ ५ दोष होते हैं, समाहित चित्तवालेको नहीं होते ॥ ३१ ॥

तत्प्रति पदार्थमेक तत्त्वाभ्यासः ॥ ३२ ॥

उन (६ विक्षेपों और उनके साथियों) के निवारणार्थ एकतत्व (प्रकरणसे ईश्वर स्मरण) का अभ्यास करे। यहां प्रकरणसे "एकतत्व" पदका अर्थ ईश्वर है जिसमें "एकोदेवः" श्वे० ६।११ इत्यादि प्रमाण हैं, "अभ्यास" पदका अर्थ प्रणवोपासना है ॥ ३२ ॥

मैत्री करुणामुदितोपेक्षाणां सुख दुःख पुण्याऽपुण्य विषयाणां भावनाश्चित्त प्रसादनम् ॥ ३३ ॥

सुखियोंमें मित्रता, दुःखियों पर दया, पुण्यात्माओं पर हर्ष और पापियोंमें उपेक्षाकी भावनासे चित्त निर्मल होता है। (प्रश्न) इसके अतिरिक्त ईश्वर भक्तिमें चित्त स्थिर होनेका अन्य भी उपाय है ? (उत्तर):—

प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥ ३४ ॥

अथवा प्राणवायुके रेचन और धारणासे चित्तस्थिर होता है। अर्थात् चित्तस्थिर करनेका दूसरा यह उपाय है कि देरतक बार बार प्राणायाम किया जाय। प्राणायाम एक प्राणका व्यायाम है। जैसे दण्ड बैठक आदि शारीरक व्यायाम (कसरत) करनेसे शरीर सुडौल नीरोग होती है, वैसे ही भीतरके श्वासको वेगसे बाहर फुँकार मारकर निकालने और उसको यथाशक्ति बाहर रोकने वा शनैः २ भीतर लेकर भीतर रोकनेका अभ्यास करनेसे प्राणवशमें हो जाता है, प्राणके वशमें होनेसे भी चित्त वश्य (स्थिर) हो जाता है ॥ ३४ ॥

अब तीसरा उपाय कहते हैं किः

विषयवती वा प्रवृत्ति रुत्पन्नामनसः स्थितिनिबन्धनी ॥३५॥

अथवा गन्धादि विषयोंका साक्षात्कार करनेवाली मानस-वृत्ति उत्पन्न होकर मनकी स्थिति को सम्पादन करती है। अर्थात् नासिकाके अग्रभागमें धारणा, ध्यान और समाधि करनेवालेका उसके जीतनेसे गन्ध आने लगता है। इसी प्रकार जिह्वाके अग्रभागमें संयम करनेसे दिव्य रसका स्वादु आने लगता है। तालुमें संयमसे दिव्य रूप दिखाई देने लगता है। जिह्वाके मध्यमें संयमसे दिव्य स्पर्श जान पड़ता है। जिह्वाके मूलमें संयमसे दिव्य शब्द सुन पड़ते हैं। यह पाँचों प्रवृत्तियें अल्पकालमें ही उत्पन्न होकर शास्त्र, अनुमान तथा आचार्यसे जाने हुए अन्य विषयोंमें विश्वास उत्पन्न कराती हैं, और प्रकृति पुरुषके विवेक तथा ईश्वरमें शीघ्र ही चित्तको स्थिर करती हैं, अतएव योगी विषयवती प्रवृत्तिसे चित्तकी स्थिरता को सम्पादन करे ॥ ३५ ॥

विशोका वा ज्योतिष्मती ॥ ३६ ॥

अथवा शोक रहिता और ज्योतिवाली (उत्पन्न हुई प्रवृत्ति मनकी स्थिति को बांधने वाली है। अर्थात् हृदय कमल में संयम करने से जहाँ रजोगुण, तमोगुण नहीं, प्रवृत्ति शोक रहिता हो जाती है, तथा अस्मिता मात्र प्रकाश मय में संयम करनेसे प्रवृत्ति प्रकाशवती हो जाती है, सो यह शोक रहिता और ज्योति वाली प्रवृत्ति भी मनको स्थिर कर देती है। अब चौथा उपाय कहते हैं ॥ ३६ ॥

वीतराग विषयं वा चित्तम् ॥ ३७ ॥

अथवा रागरहित चित्त (स्थिर हो जाता है) अब पाँचवां उपाय बताते है ॥ ३७ ॥

स्वप्न निद्रा ज्ञानाऽलम्बनं वा ॥ ३८ ॥

अथवा स्वप्न ज्ञान का सहारा लेने वाला (चित्त स्थिर हो जाता है)। अर्थात् स्वप्न (नींद) में जैसे बाह्यविषयों का ग्रहण नहीं होता और निद्रा (सुषुप्ति) में जैसे बाह्याभ्यन्तर

कोई विषय नहीं रहते, इसी प्रकार स्वप्न और सुषुप्तिके भा चित्तका संयम करनेसे भी चित्त स्थिर हो जाता है। अब अन्त में छठा उपाय बताकर उपायों की समाप्ति करते हैं ॥३८॥

यथाभिमत ध्यानाद्वा ॥ ३९ ॥

अथवा जिसको चाहे उसके ध्यान करनेसे (भी चित्त स्थिर हो जाता है)। अर्थात् मनको सब वस्तुओं में से कोई एक सबसे अधिक अभिमत (पसन्द) होता है, उसीके ध्यान करनेसे भी चित्त उसमें लगना सीख जाता है, फिर वशीभूत चित्त को अन्यत्र भी लगा सकते हैं। नाभिचक्र, हृदय कमल, मूर्द्धा, नासिकाग्र, ज्योति चन्द्र, सूर्य्य, अन्यतारा, मणि, मुक्ता आदि किसी चमकीली वस्तु वा अन्य जिस किसी को अभिमत (पसन्द) करे, उसमें चित्त लगाकर स्थिरता सिखावे, फिर वशीभूत चित्त शास्त्रोपदिष्ट पदार्थ में लगना सुगम हो जाता है। अब पक्की रीति पर चित्त स्थिर होनेकी पहिचान कहते हैं ॥ ३९ ॥

परमाणु परम महत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ॥ ४० ॥

परम अणु और परम महत्त्व तक इस (चित्त) का वशीकार हो जाता है। अर्थात् चाहें तो परम अणु सबसे छोटे पदार्थ में चित्त को लगादें और चाहें तो बडे से बड़े में। जब यह अधिकार चित्त पर योगी को हो जावे तब जानो कि चित्त वश्य हो गया। भाव यह है कि दृढ़ स्थिति पर्यन्त ही उपायों की आवश्यकता है पश्चात् नहीं। अब स्थिर हुए चित्त में होने वाली सम्प्रज्ञात समाधि का विषय तथा उसका स्वरूप निरूपण करते हैं ॥ ४० ॥

क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृ ग्रहणग्राह्येषु तत्स्थतदञ्जनता समापत्तिः ॥ ४१ ॥

स्फटिक मणि के तुल्य राजस तामसवृत्ति रहित शुद्ध सत्त्वमय चित्तका ग्रहीता ग्रहण तथा ग्राह्य में स्थिर होकर इनके

समानआकार को धारण करना समापत्ति सम्प्रज्ञात समाधि है। अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म, सर्व पदार्थ गोचर ज्ञानके आश्रय परमात्माका नाम ग्रहीता तथा ज्ञान का नाम ग्रहण और आनन्द तथा अनन्त कल्याण गुणमय परमात्माका नाम ग्राह्य है, इनके सम्बन्धसे तदाकारता को प्राप्त हुई योगीके चित्तकी वृत्तिका नाम सम्प्रज्ञात समाधि है। अब समापत्तिके चार भेद कहते हुए प्रथम सवितर्का समापत्तिका कथन करते हैं ॥ ४१ ॥

तत्र शब्दार्थ ज्ञान विकल्पैःसंकीर्णासवितर्का समापत्तिः॥४२॥

उन (चार) में सवितर्का समापत्ति वह है जो शब्द, अर्थ और ज्ञानके विकल्पोंसे मिश्रित हो। अर्थात् समापत्ति में चित्त तदाकार हो जाता है परन्तु कल्पना करो कि एक पुरुष ने गौमें चित्त को लगा कर तदाकार करके समापत्ति की तो जब तक गौ शब्द और गौ शब्द का अर्थ पशु विशेष और इन (शब्द और अर्थ) को मिला कर जो कुछ समझा जाता है वह ज्ञान; इन शब्द अर्थ और ज्ञानों के विकल्प रहें तब तक उस समापत्ति को सवितर्का कहते हैं क्योंकि उसमें शब्द भी मिश्रित है अर्थ भी और उन दोनोंका ज्ञान भी। परन्तु जब शब्द और ज्ञानके विकल्प भी न रहें तब निर्वितर्का समापत्ति होती है, जिसके अगले सूत्रमें कहते हैं कि:—

स्मृति परिशुद्धौ स्वरूप शून्येवाऽर्थ निर्भासानिर्वितर्का॥४३॥

स्मृति के मार्जित (दूर) होने पर अपने स्वरूप से शून्य सी, केवल अर्थ (ग्राह्य विषय) मात्र का जिसमें भान हो, वह निर्वितर्का (समापत्ति है)। भाव यह है कि जिस समाधि में शब्द तथा ज्ञान के विकल्प से रहित केवल परमात्माके स्वरूपमें स्थित हुई योगीकी चित्तवृत्ति परमात्म स्वरूप ही हो जाती है उसको निर्वितर्क समाधि कहते हैं। १ सवितर्का २ निर्वितर्का कह चुके, अब ३ सविचारा और ४ निर्विचारा का कथन करते हैं:—

एतयैवसविचारानिर्विचाराचसूक्ष्मविषयाव्याख्याता ॥४४॥

इस सवितर्क तथा निर्वितर्क समाधिके लक्षणसे ही सूक्ष्म विषय में होने वाली सविचार समाधि, तथा निर्विचार समाधि का भी लक्षण जानना चाहिये । अर्थात् स्थूल सूक्ष्म सर्व विषयोंसे निर्मुक्त ईश्वरके ज्ञान मात्रमें स्थिर हुई योगी की चित्तवृत्तिको सविचार तथा निर्विचार समाधि कहते हैं । जिस समाधिमें ज्ञानके आश्रय परमात्माका भान नहीं होता किन्तु ज्ञान मात्र का ही भान होता है उसको सविचार समाधि और जिसमें सम्पूर्ण जगत्की योनि अनन्त कल्याण गुणमय सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्माका भान होता है उसको निर्विचार समाधि कहते हैं । यहां पर जो सवितर्क, निर्वितर्क सविचार, निर्विचार, इसप्रकार समाधियोंका क्रमसे वर्णन किया है उसका भाव यह है कि योगी पूर्व २ समाधि को परित्याग करके उत्तरोत्तर समाधिको सम्पादन करके अपने आपको कृतार्थ न मान ले, क्योंकि परमात्मामें समाधि होनेसे पुरुष कृतार्थ होता है, जैसा कि "यच्छेद्वाङ् मनसी प्राज्ञ स्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि ज्ञानमात्मनि महतिनियच्छेत्तद्यच्छे च्छान्त आत्मनि" कठ० ३ १३ में कहा है कि बुद्धिमान् योगी इन्द्रियोंको विषयोंसे रोककर मनमें लयकरे औरमनको बुद्धिमें तथा बुद्धिको सर्वज्ञाता परमात्मामे लयकरे । अब सब समाधियों को मिलाकर सम्प्रज्ञात समाधिका उपसंहार करतेहैं:—

सूक्ष्म विषयत्वं चालिङ्ग पर्यवसानम् ॥ ४५ ॥

और सूक्ष्म विषयमें होनेवाली समाधिका (अलिङ्ग पर्यवसानम्) ईश्वर पर्य्यन्त (सूक्ष्म विषयत्वं) सूक्ष्म विषय है । तात्पर्यः— सूक्ष्म विषयमें होनेवाली सविचार तथा निर्विचार समाधिके विषयकी अवधि परमात्मा है । अब सब समाधियोंको मिला कर सम्प्रज्ञात समाधिका उपसंहार करते हैं:—

तापव सबीजः समाधिः ॥ ४६ ॥

पूर्वोक्त चारो समाधियों कोही सम्प्रज्ञात योग कहते हैं। अब उक्त समाधियोंमें से निर्विचार समाधिकी उत्तमता कथन करते हैं ॥ ४६ ॥

निर्विचार वैशारद्येऽध्यात्म प्रसादः ॥४७ ॥

निर्विचार समाधिकी निर्मलतासे सब पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान होता है। "निर्विचार समाधिका नैर्मल्य यह है कि रजोगुण तमोगुणोंके मलसे रहित प्रकाशरूप बुद्धि सत्वकी, प्रकृति (प्रधान) पर्यन्त सूक्ष्म ग्राह्य विषयका जिसमें प्रत्यक्ष हो जाता है और रजोगुण तमोगुणोंसे तिरोहित (अन्तर्हित) नहीं होती, जो सात्विक होनेसे निरी निर्मल है, ऐसी स्थिरता हो जाना। इस दशामें सात्विक बुद्धिप्रसन्न निर्मल स्वच्छ निर्विकार हो जाती है और उस बुद्धि को अर्थात्:—

ऋतं भरातत्र प्रज्ञा ॥ ४८ ॥

उस निर्विचार समाधिकी निर्मलता होने पर एकाग्र चित योगीका जो (प्रज्ञा) ज्ञानकी प्राप्ति होती है योगीजन उसको ऋतंभरा प्रज्ञा कहते हैं। ऋतंभर का अर्थ यह है कि ऋत-सत्य-विकल्परहित यथार्थ पदार्थको जो बुद्धि विषयतासे धारण करती है अर्थात् तब निर्भ्रम बुद्धि हो जाती है ॥४८॥

श्रुतानुमान प्रज्ञाभ्या मन्य विषया विशेषार्थत्वात् ॥ ४९ ॥

(यह ऋतंभरा प्रज्ञा) विशेष विषयिणि होनेसे श्रुत-शास्त्र और अनुमानकी प्रज्ञासे भिन्न विषया है। "शास्त्र और अनुमानसे भी पदार्थका ज्ञान होता है परन्तु साक्षात्कार नहीं होता, परहाँ, इस ऋतंभरा प्रज्ञासे साक्षात्कार होता है, इस लिये शास्त्र अनुमान तो सामान्य ज्ञान कराने वाले हैं और ऋतंभरा प्रज्ञा विशेष ज्ञान कराती है। इसलिये यह श्रुत और अनुमानसे अन्यविषया है ॥४९॥

तज्जः संस्कारोऽन्य संस्कार प्रतिबन्धी ॥५०॥

इस (ऋतंभरा प्रज्ञा) से उत्पन्न हुआ संस्कार अन्य

संस्कारोंका हटाने वाला है। "यद्यपि शब्दादि विषय भोग वासना रूप अनादि शत्रु, अयोगियोंके संस्कार बड़े प्रबल हैं पर ऋतंभरा प्रज्ञा जब अपना संस्कार उत्पन्न करती है तो अन्य संस्कारोंको दूर भगाती है ॥५०॥

तस्यापि निरोधे सर्व निरोधान्निर्बीजः समाधिः ॥ ५१ ॥

पर वैराग्य द्वारा प्रज्ञा तथा प्रज्ञा संस्कारोंका निरोध हो जानेपर पुरातन नूतन सर्व संस्कारोंके न रहनेसे निर्बीजसमाधि होती है। "यह सब समाधियोंसे उत्तम समाधिहै।" इसी भावको मुण्डकोपनिषद् में इस प्रकार स्पष्टकिया है कि:—

यदापश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुष ब्रह्मयोनिम् ॥
तदाविद्वान् पुण्यपापेविधूयनिरञ्जनः परमं साम्य मुपैति॥मु०३।१।३

अर्थ—जब विवेकी पुरुष वेद प्रकाशिक, स्वयंप्रकाश, जगत्कर्ता परमात्माको देखता है तब अज्ञानसे रहित होकर पुण्य पाप की निवृत्ति द्वारा मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥

॥ इति प्रथमः समाधिपादः समाप्तः ॥

* ओ३म् *

अथ द्वितीय साधनपादः प्रारभ्यते

प्रथमपादमें योग तथा योगके भेदोंका विस्तार पूर्वक वर्णन किया. अब इस पादमें योगके साधनोंका निरूपण करते हुए प्रथम "क्रिया योग" का उपदेश करते हैं:—

तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगः ॥ १ ॥

तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान, इन तीनोंको क्रिया योग कहते हैं। "सुखदुःख, शीत उष्णादि द्वन्दोंका सहने और हितकर तथा परिमित आहार करने का नाम तप है। प्रणव ओ३म् का जप और वेद, उपनिषदादि शास्त्रोंके अध्ययनका नाम स्वाध्याय है। फल की इच्छा छोड़ कर केवल ईश्वरकी प्रसन्नता के लिये वेदोक्तकर्मों के करने का नाम 'ईश्वर प्रणिधान' है। इन तीनोंका नाम योग शास्त्रमें "क्रियायोग" है,

क्योंकि यह तीनों स्वयंक्रियारूप तथा योगके साधन हैं; इनके करनेसे अस्थिर चित्तवाला भी योगको प्राप्तहो जाता है। अब उक्त क्रियायोगका फल कथन करते हैं:—

— समाधि भावनार्थः क्लेशतनू करणार्थश्च ॥ २ ॥

(वह क्रिया योग) समाधिको सिद्ध करता और अविद्यादि क्लेशोंको शिथिल करता है। अब क्लेशोंकी गणना करते हैं:—

अविद्याऽस्मिता राग द्वेषाऽभिनिवेशाः पञ्चक्लेशाः ॥ ३ ॥

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश ये पांच क्लेश हैं। अब उक्त क्लेशों का मूल कारण कहते हैं:—

अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनु विच्छिन्नो दाराणाम् ॥ ४ ॥

अस्मितादि चारों क्लेशो का अविद्यामूल कारण है, और यह चारों प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार भेद से चार प्रकार के हैं। जैसे "खेत में अन्न उपजते हैं, वैसे अविद्या में अस्मिता आदि उपजते हैं, खेत न होतो जैसे अन्न उत्पन्न नहीं हो सकते, वैसे ही अविद्या न हो तो अस्मितादि क्लेश भी उत्पन्न नहीं हो सकते। बीज रूप से चित्त में रहनेवाले तथा सहकारी कारण के बिना अपने कार्य की उत्पत्ति में असमर्थ क्लेशों का नाम "प्रसुप्त" है और क्रिया योग द्वारा निर्बल हुए क्लेशों का नाम "तनु" है, सजातीय वा विजातीय क्लेशके वर्त्तमान क्लेशके वर्त्तमान कालमें न होने वाले अर्थात् कभी २ अवसर पाकर प्रकट होने वाले क्लेशोंका नाम "विच्छिन्न" है और विषयोंके सम्बन्धसे प्रकट होकर सुख दुःख आदि कार्य्य का उत्पन्न करने वाले क्लेशों का नाम "उदार" है। इनमें:—

प्रसुप्तास्तत्त्वलीनानां तन्ववस्थाश्च योगिनाम्।
विच्छिन्नोदार रूपाश्च क्लेशा विषय सङ्गिनाम् ॥

अर्थ—विदेह और प्रकृतिलय पुरुषोंके "प्रसुप्त" योगियोंके "तनु" और विषय रत पुरुषोंके विच्छिन्न तथा "उदार" होते हैं। अब अविद्या का लक्षण करते हैं॥ ४ ॥

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ॥ ५ ॥

अनित्यमें, नित्यता, अशुचिमें शुचिता, दुःखमें सुख और अनात्मामें आत्मापना समझना अविद्या है। उलटे ज्ञान अर्थात् अन्यमें अन्यबुद्धिको अविद्या कहते हैं; जिसके ४ भाग हैं। १-अनित्य जगत् आदिको नित्य जानना; २-मलमुत्रादिके भण्डार देहादिको शुचि मानना; ३-विषय भोगादि परिणाम दुःखोंको सुख समझ कर उनमें फंसना, और ४-अनात्मा बुद्धि आदि वा स्त्रीपुत्रादिको आत्मा समझना। इस प्रकार पापको पुण्य अनर्थको अर्थ इत्यादि जानना भी अविद्याही है। अब दूसरे क्लेश "अस्मिता" का लक्षण कहते हैं।

दृग्दर्शन शक्त्यारेकात्मतेवाऽस्मिता ॥६॥

द्रष्टा और दर्शनकी शक्तिको एकसा मानना "अस्मिता" है देखने वाला आत्मा और देखनेका साधन बुद्धिवा अन्तःकरण मात्रका एक मान लेना अस्मिता है। अविद्या और अस्मितामें भेद इतनाही है कि केवल आत्माको अनात्मा वा अनात्माको आत्मा मानना अविद्या और सुख दुःखादि विशिष्ट अन्तःकरणादिको यह मानना कि अहं सुखी-मैं सुखी हूँ, अहं दुःखी = मैं दुःखी हूँ इत्यादि अस्मिता है। अब रागका लक्षण करते हैं।

सुखानुशयी रागः ॥७॥

सुखभोगके अनन्तर चित्तमें उत्पन्न हुई इच्छा विशेषका नाम राग है अब द्वेषका लक्षण करते हैं—

दुःखानुशयोद्वेषः ॥ ८ ॥

दुःख अनुभवके अनन्तर उत्पन्न क्रोध रूप चित्त वृत्तिका नाम द्वेष है। अब अभिनिवेशका लक्षण कहतेहैं:—

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथा रूढोऽभिनिवेशः ॥ ९ ॥

विवेकी पुरुषको भी मूर्खके समान वासनाके बल से होने-

वाले मरण भयको अभिनिवेश कहते है। "अब न मरूँ" यह चित्त वृत्ति विशेष अभिनिवेश कहाता है। उक्त पाँच क्लेशोंका नाम अन्य शास्त्रोंमें तम, मोह महामोह, तामिस्र, अन्धतामिस्र है; जैसा कि निम्नलिखित श्लोकमें वर्णन किया है कि:—

तमो मोहो महामोहस्तामिस्रो ह्यन्धसंज्ञकः।
अविद्या पञ्च पर्वैषा सांख्य योगेषु कीर्तिता॥

सांख्य और योग शास्त्रमें अविद्याका नाम "तम" अस्मिताका "मोह" रागका "महामोह" द्वेषका "तामिस्र" और अभिनिवेशका "अन्धतामिश्र" है। अब क्लेशके त्यागका उपाय कहते हैं॥ ९॥

ते प्रति प्रसव हेयाः सूक्ष्माः॥ १०॥

उक्त क्लेश क्रिया योग द्वारा निर्बल होकर चित्तके निवृत्त होने पर स्वयं निवृत्त हो जाते हैं। अर्थात् प्रथम उन क्लेशोंको क्रिया योगसे सूक्ष्म (हलका) करना चाहिये और फिर जहाँसे क्लेश उत्पन्न होता हो उसको वहाँका वहीं रोक देना, इस प्रकार सूक्ष्म क्लेशोंका बचाव हो सकता है। और—

ध्यान हेयास्तद्वृत्तयः॥ ११॥

उन (क्लेशों) की वृत्तियें ध्यानसे हटानी चाहिये। अब यह कहते हैं कि इन क्लेशोंको क्यों हटाना चाहिये।

क्लेश मूलः कर्माशयो दृष्टादृष्ट जन्मवेदनीयः॥ १२॥

इस जन्म तथा जन्मान्तरमें फल देनेवाले शुभाशुभ कर्म जन्य धर्माधर्मका अविद्यादि क्लेश मूल कारण है। 'इसलिये मुमुक्षु वा योगीको हटाना है।' क्योंकि:—

सतिमूलेतद्विपाको जात्यायुर्भोगाः॥ १३॥

मूलके होते हुये उनका फल १ जाति, २ आयु, और ३ भोग होते हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जाति, नियतकाल तक जीवन, और सुख दुःखादि भोग रूप कर्म विपाक तबही तक है जबतक उनके मूल क्लेश हैं, जब अविद्या क्लेश जो मूल

हैं, न रहें, तो "छिन्नेमूले नैव पत्रं न शाखाः" जड़ कट जाने पर न पत्र रहें न टहनी। इस कहावतके अनुसार न जाति रहे, न आयु रहे और न भोग रहें। अब यह कहते हैं कि जाति, आयु और भोगमें क्या बुराई है? जिससे बुरे बताये जाते हैं:-

ते ह्लादपरितापफलाः पुण्याऽपुण्य हेतुत्वात् ॥ १४ ॥

वे (जाति, आयु और भोग) पुण्य और पाप हेतु होनेसे हर्ष शोक रूप फल वाले हैं। यदि कोई कहे कि जिनसे दुःख की प्राप्ति होती है वही त्याज्य हो सकते हैं अन्य नहीं? उत्तरः-

परिणाम ताप संस्कार दुःखैर्गुणवृत्ति विरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ॥ १५ ॥

विवेकीको तो परिणाम दुःख, ताप दुःख और संस्कार दुःखसे तथा गुण वृत्तियोंके (परस्पर) विरोधसे सब दुःख ही है।" मन, वाणी तथा शरीरके मानसिक, वाचिक और शारीरिक शुभाशुभ कर्मोंको करता है, उनसे जन्म और जन्मसे जो इसको दुःख प्राप्त होता है उसका नाम "परिणाम दुःख" है क्योंकि विषय सुख ही राग द्वेषादिकोंकी उत्पत्ति द्वारा भावी जन्ममें दुःख रूपसे परिणत हुआ है। विषय सुखकी प्राप्ति समयमें जो पुरुषको सुख साधनोंकी अपूर्णता देखकर हृदयमें सन्ताप उत्पन्न होता है उसका नाम "ताप दुःख" है। विषय सुखके अनुभवसे संस्कार, संस्कारोंसे सुख स्मरण, सुख स्मरणसे राग, तथा रागसे सुख प्राप्तिके लिये शुभाशुभ कर्मोंमें प्रवृत्ति, प्रवृत्तिसे पुण्य पाप और पुण्य पापसे पुनः जन्म द्वारा सुखानुभव और फिर पुनः संस्कार, इस प्रकार होनेवाले जन्म मरणके हेतु संस्कार चक्रका नाम "संस्कार दुःख" है। इसलिये क्लेश मूलक कर्माशय को त्यागना इष्ट है। अब जब सब दुःख ही दुःख है, तो उस दुःख की तीन अवस्था हो सकती हैं। १ भूत दुःख, २ वर्तमान दुःख और ३ भावी दुःख। जो दुःख हो चुका उसकी चिन्ता व्यर्थ है;

जो वर्तमान् है, वह अगले क्षणमें न रहेगा, भूत हो जायगा, उसका विचार भी व्यर्थ है, परन्तु जो दुःख होने वाला है उसी को रोकना चाहिये। इसलिये आचार्य्य अगला सूत्र बताते हैं कि:—

हेयं दुःखमनागतम् ॥ १६ ॥

जो दुःख अनागत (अभी नहीं आया, पर आनेवाला) है; वह हटाना चाहिये।

द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ॥ १७ ॥

द्रष्टा और दृश्य का संयोग=हेय का हेतु है। "द्रष्टा जीवात्मा और दृश्य प्रकृति जन्य देहादि कार्य, इनका संयोग ही हेय संसार दुःख का हेतु है। अब दृश्य=प्राकृत पदार्थ का स्वरूप वर्णन करते हैं कि:—

प्रकाश क्रिया स्थिति शीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगाऽपवर्गार्थं दृश्यम् ॥ १८ ॥

पुरुष को भोग तथा अपवर्ग देनेवाले भूत तथा इन्द्रिय रूप से परिणाम को प्राप्त प्रकाश, क्रिया तथा स्थिति स्वभाव वाले सत्त्वादि गुणों को दृश्य कहते हैं। अर्थात् पृथिवी, जल तेज, वायु, आकाश यह पाँच स्थूल और गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द यह पांच सूक्ष्म इन दशों का नाम "भूत" और वाक्, पाणि (हाथ), पाद, गुदा, उपस्थ, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना, घ्राण, मन, अहंकार, बुद्धि इन तेरह का नाम "इन्द्रिय" है। प्रकाश स्वभाव का नाम सत्त्वगुण, क्रिया स्वभाव का नाम रजोगुण और स्थिति स्वभाव का नाम तमोगुण है अर्थात् प्रकाश शक्ति का नाम "सत्व" और क्रिया शक्ति का "रज" तथा प्रकाश क्रिया के प्रति बन्धक आवरण शक्ति का नाम "तमोगुण" है। सुखदुख के साधन विषयों की प्राप्ति का नाम "अपवर्ग" है। ईश्वर की आज्ञानुसार पुरुष को भोग तथा अपवर्ग देने के लिये भूत और इन्द्रिय रूप से परिणत

सत्त्वादि गुणरूप प्रकृति का नाम "दृश्य" है । अब उक्त दृश्य की अवस्था विशेष का निरूपण करते हैं:—

विशेषाऽविशेष लिङ्ग मात्रा लिङ्गानि गुण पर्वाणि ॥ १६ ॥

विशेषों, अविशेषों, लिङ्ग मात्रों और अलिङ्गोंको गुणोंके पर्व (अवस्था भेद) कहते हैं । आकाशादि पाँच ५ स्थूल भूत, श्रोत्रादि ५ ज्ञानेन्द्रिय, वाणी आदि ५ कर्मेन्द्रियें और १ मन; ये १६ षोडशविकार विशेष कहाते हैं । आकाशादि के कारण सूक्ष्म भूत (तन्मात्रा) अपने २ से परले २ के लक्षण मिल कर १।२।३।४ और ५ पांच लक्षणों वाले शब्द, स्पर्श रूप, रस और गन्ध, ये पांच और छठा अहङ्कार; ये छः ६ अविशेष कहाते हैं, ५ तन्मात्राओं और अहङ्कार के कारण महत्तत्व को लिङ्ग मात्र कहते हैं, और महत्तत्व के भी कारण भूत = प्रधान प्रकृति को अलिङ्ग कहते हैं, ये चारों गुण पर्व कहाते हैं । इनमें से सत्त्वादि ३ गुणों की साम्याऽवस्थाको अलिङ्ग और विषमाऽवस्थाको विशेष अविशेष और लिङ्ग मात्र जानिये । यह सांख्य और योग का प्रक्रिया भेद मात्र है कि संख्या तो ५ तन्मात्रों को अहङ्कार का कार्य्य लिखता है और योग इन ५ को अहङ्कारका भाई और महत्तत्त्वकी सन्तान (कार्य) बताता है । अवस्था भेदके वर्णन पूर्वक दृश्यका स्वरूप बताकर अगले सूत्रमें द्रष्टाका स्वरूप बताते हैं कि:—

द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपिप्रत्ययानुपश्यः ॥२०॥

द्रष्टा ज्ञान स्वरूप है और शुद्ध भी (बुद्धिकृत) प्रत्ययोंके अनुसार देखने (जानने) वाला है । तात्पर्य्य यह है कि जो प्रमाणादि बुद्धि वृत्तियों द्वारा सम्पूर्ण पदार्थोंका प्रमाता तथा कूटस्थ नित्य चेतन स्वरूप पुरुष है वह "द्रष्टा" है । अब द्रष्टा और दृश्यका वर्णन करके इनका परस्पर सम्बन्ध बताते हैं कि:—

तदर्थ एव च दृश्यास्यात्मा ॥ २१ ॥

दृश्यका आत्मा (स्वरुप) केवल द्रष्टा के ही लिये है ।

प्रकृति जन्य कार्य अपने लिये नहीं किन्तु द्रष्टा पुरुषके लिये ही भोग तथा मोक्षार्थ है, यही इनका सम्बन्ध है । यदि कहो कि कृतार्थ (कामयाब) के लिये तो दृश्य (प्रकृति) नष्ट (व्यर्थ) है क्योंकि उसने विवेक से उसे आत्मा से पृथक् जान त्याग दिया, तो उत्तर यह है कि:—

कृतार्थं प्रति नष्टमप्य नष्ट तदन्य साधारणत्वात् ॥ २२ ॥

जिस पुरुष का प्रयोजन सिद्ध हो गया है उसके प्रति नाशको प्राप्त होनेपर भी, प्रकृति स्वरूप से नाश नहीं होती; क्योंकि वह सबके लिये है । "नष्टका अर्थ व्यर्थ इसलिये किया गया है कि वास्तविक नाश वा अभाव असंभव है क्योंकि प्रकृति कालापेक्ष अनादि अनन्त तीन पदार्थों (जीव ब्रह्म, प्रकृति) में से एक है । द्रष्टा और दृश्यका स्वरूप बताकर अब संयोग का वर्णन करते हैं :—

स्व स्वामी शक्तयोः स्वरूपोपलब्धि हेतुः संयोगः ॥ २३ ॥

स्व (मिलकियत) और स्वामी (मालिक) की शक्तियों के स्वरूप की उपलब्धिका हेतु सम्बन्ध है । यहां स्व शब्दसे प्रकृति और स्वामी शब्दसे पुरुषका ग्रहण है । स्व और स्वामी अर्थात् प्रकृति और पुरुष की शक्तियें संयोगसे उपलब्ध होती हैं यदि इन प्रकृति और पुरुषका संयोग न हो तो दोनों की शक्तियें उपलब्ध नहीं हो सकतीं । अब उक्त संयोगके हेतु कथन करते हैं:—

तस्य हेतुरविद्या ॥ २४ ॥

प्रकृति पुरुषके संयोगका कारण अविवेक है । "अविद्या" अज्ञान, मिथ्याज्ञान, भ्रान्तिज्ञान, अविवेक, उलटा ज्ञान इत्यादि पदवाच्य अविद्या से द्रष्टा दृश्य में फँसा पड़ा है। बस अब मूल कारण बन्धका जान पड़ा इसलिये अविद्याही हटाने योग्य है । इसलिये अगले सूत्रमें हानका वर्णन करते हैं और बताते हैं कि अविद्याके न रहनेसे कैसे कैवल्य मोक्ष हो सकता है यथाः—

तद्ऽभावात्संयोगाऽभावो हानं तद् दृशेः कैवल्यम् ॥२५॥

उक्त अविद्याके निवृत्त होने पर द्रष्टा दृश्यके संयोगकी निवृत्तिका नाम हान है, और यह हानही पुरुषकी मोक्ष है। यह नियम है कि "निमित्तापाये नैमित्ति कस्याप्यपायः निमित्त की निवृत्ति होनेसे नैमित्तिककी भी निवृत्ति हो जाती है। संसार रूप दुःखके हेतु द्रष्टा दृश्य संयोगका निमित्त अविद्या है, बिवेक ज्ञान द्वारा अविद्या को निवृत्ति होनेसे जो प्रकृति पुरुषके संयोगकी निवृत्ति है उसीका "हान" है। इस हानकी प्राप्ति होने पर प्रकृतिके सम्बन्धसे होने वाले सम्पूर्ण दुःखों की निवृत्ति हो जाती है। अतएव दुःखका हेतु प्रकृति संयोग ही पुरुषको बन्ध और उसकी निवृत्ति ही मोक्ष है। तात्पर्य यह है कि पुरुष में बन्ध, मोक्ष औपाधिक हैं स्वाभाविक नहीं अब उक्त अविद्या के हान हटानेका उपाय क्या है उसे कहते हैं:—

विवेक ख्याति रविप्लवा हानोपायः ॥ २६ ॥

विप्लव रहित विवेक ज्ञानही हानका उपाय है। वासना सहित मिथ्या ज्ञानका नाम "विप्लव" है। विप्लव. उपद्रव, मलिनता यह सब पर्य्याय शब्द हैं, जो विवेक ख्याति मिथ्या ज्ञान तथा मिथ्या ज्ञान की वासना के सहित उदय होती है वह विप्लव वाली है और क्रिया योग के अनुष्ठान द्वारा वासना सहित मिथ्या ज्ञानके सूक्ष्म हो जाने पर दीर्घ काल नैरन्तर्य्य सत्कार पूर्वक समाधिके अभ्याससे जो प्रज्ञा उत्पन्न होती है जिसका दूसरा नाम ऋतम्भरा है उसको अविप्लव विवेक ख्याति कहते हैं, क्योंकि उस काल में क्रिया योगके प्रभावसे कार्य्य सम्पादन में असमर्थ हुआ मिथ्या ज्ञान उसको मलिन नहीं कर सकता, इस प्रकार वासना सहित मिथ्या ज्ञान रूप उपद्रवसे रहित हुई निर्मल विवेक ख्यातिही हानका उपाय है। उस विवेक ख्याति मान् योगी को फिर क्या फल होता है सो कहते हैं ॥ २६ ॥

तस्य सप्तधा प्रान्त भूमिः प्रज्ञा ॥ २७ ॥

उस (विवेकी) को सात प्रकार की प्रान्त भूमि प्रज्ञा हो जाती है। अर्थात् निर्मल विवेक ख्यातिके उत्पन्न होनेसे जो योगीके चित्तमें प्रज्ञा उत्पन्न होतीहै वह विषय भेदसे सात प्रकार की है, १—जिज्ञासाका अन्त। सब कुछ जो त्याज्य था, जान लिया अब जाननेकी इच्छा नहीं। २-जिहासाका अन्त। त्याज्यके हेतु अविद्यादि पांचों क्लेश निवृत्त हो गये अब मुझको इनमें से कोई भी निवर्त्तनीय नहीं। ३—प्रेप्साका अन्त। हानको पालिया, अब कुछ पावना शेष न रहनेसे प्रेप्सा = प्राप्त करनेकी इच्छाकी भी पूर्ति हुई। ४-चिकीर्षाका अन्त। हान का उपाय विवेक कर चुके, अब कुछ करना शेष नहीं अतः चिकीर्षा भी पूरी हुई। ये ४ तो प्रज्ञाकी विमुक्ति (छुटकारा) हुई, अब शेष ३ रहीं सो चित्तकी विमुक्ति हैं। उनमें पहली १-मेरा बुद्धि सत्त्व कृतार्थ हो गया। अब इसका अन्त आगया। २-बुद्धिरूपसे परिणत (रूप बदले हुवे) गुण भी अपने कारण (प्रकृति) में लयको प्राप्त हो गये, जैसे पहाड़ परसे लुढ़के हुवे पत्थर कहीं ठिकाना न पाते हुवे टूटते २ रेत बन जाते हैं। इसी प्रकार सत्त्वादि तीनों गुण भी बुद्धि सत्त्व सहित लयको प्राप्त हो जाते हैं। ३-अब तो गुणोंसे अतीत, स्वरूप मात्रसे अवस्थित, चेतन मात्र, एक रस, केवली पुरुष (जीवात्मा) परमात्मासे साक्षात् करेगा, अब क्या शेष है कुछ नहीं। इस प्रकार चित्तकी विमुक्ति हो जाती है। यूं पूर्वोक्त ४ और ये अन्त में कहीं तीन मिलकर सात प्रान्त भूमि हुईं। अब साधनोंका वर्णन इसलिये आरम्भ करते हैं कि साध्यकी सिद्धि साधन वा साधनोंके विना नहीं होती। तथाहिः—

योगाङ्गानुष्ठानाद शुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेक ख्यातेः ॥२८॥

योगाङ्गोंके अनुष्ठान द्वारा अशुद्धिके नाश हो जानेसे विवेक ख्याति पर्यन्त निर्मल ज्ञानकी प्राप्ति होती है। अर्थात् जैसे २

साधनोंका अनुष्ठान (अमल) करते जाओगे वैसे २ अशुद्धि घटती जायगी, जैसे २ अशुद्धि घटती जायगी, वैसे २ सम्यक् ज्ञानका प्रकाश बढ़ता जायगा, यह ज्ञान प्रकाशकी वृद्धि विवेक ख्याति होने तक बराबर बढ़ती जायगी । इस लिये अङ्गों से ही योगानुष्ठान ठीक होगा । अब अङ्गोंकी गणना करते हैं कि:—

यमनियमाऽऽसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयोष्टावङ्गानि ॥ २९ ॥

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि यह आठ योगके अङ्ग हैं । यद्यपि प्रथम पादमें बताये हुवे अभ्यास, वैराग्य, श्रद्धा, वीर्यादि भी योगके ही अङ्ग वा साधनथे पर यहाँ जो ८ अंग गिनाये हैं उनमें पूर्वोक्त अभ्यासादि भी अन्तर्गत जानिये । जैसेकि समाधिमें अभ्यास, सन्तोषमें वैराग्य, तप आदिमें श्रद्धादि, धारणादिमें मैत्री करुणादि का यथा योग्य अन्तर्भाव समझना चाहिये । अब इन ८ मे से एक २ वर्णनमें प्रथम यम कितने और कौन २ हैं सो बताते हैं: ॥ २९ ॥

अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्या परिग्रहायमाः ॥ ३० ॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह यह पांच यम हैं । १–मन वचन–कर्मसे सदा सब प्राणियोंको पीड़ा न देना = अहिंसा, २–जैसा कुछ देखा, सुना और मनमें हो वही कहना = सत्य, ३ सब प्रकारसे पराये द्रव्यमें लालच न करना = अस्तेय, ४ उपस्थेन्द्रियका संयम और वीर्य रक्षा = ब्रह्मचर्य, और धनादिके संग्रहमें कमाने रखने, खोये जाने, पर पीड़ा इत्यादि दोष देखकर सदा शरीर यात्रा निर्वाहसे अतिरिक्त भोग साधनों को स्वीकार न करना = अपरिग्रह कहाता है । यमका अर्थ यह है कि "विषयोंसे उपरत किये जावें, मन सहित सब इन्द्रियें जिनसे वे यम ५ कहाते हैं । उन यमोंकी विशेषता यह है कि:– ॥ ३० ॥

जाति देश काल समयाऽनवच्छिन्नाः सार्व भौमा महाव्रतम् ॥ ३१ ॥

(वे यम यदि) जाति, देश, काल और समय से न कटें और सब भूमियों में रहें (तो) महाव्रत हैं। अहिंसादि यम जात्यादिमें संकुचित न होकर सर्वत्र रहें तो महाव्रत हैं। जैसे एक अहिंसा तो जातिसे संकुचित है कि गौ वा ब्राह्मणको नहीं मारूँगा, पर जातिसे अनवच्छिन्न अहिंसा यह है कि किसीको भी न मारूंगा ऐसेही देशसे संकुचित अहिंसा यह है कि कुरुक्षेत्रादि तीर्थस्थलोंमें न मारूंगा, पर देशाऽनवच्छिन्न अहिंसा यह है कि कहीं भी न मारूँगा। तथा एकतो कालाऽवच्छिन्न अहिंसा है कि अमावास्या पौर्णिमा आदि पर्वोंमें नमारूंगा, पर कालाऽनवच्छिन्न अहिंसा वह है कि कभी भी नमारूंगा। इसी प्रकार एकतो समयाऽवच्छिन्न अहिंसा है कि नियमवा प्रतिज्ञाके विरुद्ध न मारूँगा। जैसे कोई प्रतिज्ञा करले कि किसीके कहे विना अपने आप न मारूँगा, पर समयाऽवच्छिन्न अहिंसा वह है कि किसी प्रकार नियम अनियम आदि आदि किसीभी प्रकार न मारूंगा। सो ऐसी अहिंसा जो सब जातियों, सब देशों, सबकालों और सब नियमाऽनियमादिमें टूटनेही न पावे, सार्व भौम महाव्रत हुई। वैसे ही सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहमें भी जानना चाहिये। जो यम उक्त जाति आदिके द्वारा संकुचित नहीं और जाति, देश, काल तथा समय रूप भूमियों में निरन्तर अनुष्ठान किये जाते हैं अर्थात उक्त भूमियोंमें जिनके अनुष्ठानका कदापि व्यभिचार नहीं होता उनको 'महाव्रत' कहते हैं, यही महाव्रत योगियों को योग सिद्धिके लिये अनुष्ठेय है।

अब दूसरे योगाङ्ग नियमोंका वर्णन करते हैं:—

शौच सन्तोष तपःस्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानिनियमाः॥३२॥

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान यह नियम हैं १-"शौच" बाह्य और आभ्यन्तर भेदसे दो प्रकारका

है। जल अथवा मिट्टी आदिसे शरीरके और हित, मित तथा मेध्य = पवित्र भोजनादिसे उदरके प्रक्षालनका नाम "बाह्यशौच" और मैत्री, करुणा मुदिता आदि भावनाओंसे ईर्षा आदि चित्तमलोंके जैसा पूर्व कह आये हैं प्रक्षालनका नाम "अभ्यन्तर शौच" है। २-"सन्तोष" जोभोगके उपयोगी साधन विद्यमान हैं उनसे अधिक अनुपयोगी साधनोकी इच्छाके अभावका नाम सन्तोष है। ३ "तप"—सुख, दुःख, शीत, उष्णादि द्वन्दों को सहारने और हितकर तथा परिमित आहार करनेका नाम तप है। ओंकारादि ईश्वरके पवित्र नामोंका जब और वेद, उपनिषद् आदि शास्त्रोंके अध्ययनका नाम स्वाध्याय है "ईश्वर प्रणिधान" फलकी इच्छा छोड़कर केवल ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये वेदोक्त कर्मोंके करनेका नाम ईश्वर प्रणिधान है। ये ५ नियम कहाते हैं। नियमका अर्थ यह है कि जो अवश्य कर्त्तव्यताविधान किये जावैं। अब उक्तयम नियमोंके अनुष्ठान कालमें प्राप्त होनेवाले विघ्नोंकी निवृत्तिका उपाय कथन करते हैं:-

वितर्क बाधने प्रतिपक्ष भावनम् ॥३३॥

वितर्कों के द्वारा उक्त यम नियमोंके अनुष्ठानमें बाधा प्राप्त होने पर प्रतिपक्षका चिन्ता करे। हिंसा, मिथ्या भाषण, स्तेय (चोरी) आदिका नाम "वितर्क" और इनके द्वारा यम, नियमोंके अनुष्ठानमें प्रतिबन्धका नाम "बाधन" और हिंसादिसेहोने वाले दुःखादिरूप भावी फलके चिन्तनका नाम "प्रतिपक्ष भावन" है अर्थात् किसी समय यमनियमोंके साधनमें बाधा पड़े तो प्रति पक्ष चिन्तन करना जैसे त्याग किये हुये का ग्रहण करना यह कुत्तेका ही स्वभाव है मनुष्यको नहीं, अतएव मुझको दुःखमय संसाराग्निके सन्तापसे बचनेके लिये हिंसा आदि वितर्कोंका कदापि ग्रहण न करना चाहिये। ऐसा करने से योगीके चित्तमें हिंसा आदि वितर्क कदापि उत्पन्न नहीं होते और निर्विघ्नतासे अनुष्ठित हुए यम नियम शीघ्र ही योग

को सिद्ध करते हैं। अब वितर्कोंके स्वरूप प्रकार, कारण, धर्म तथा फलका निरूपण करते हुए प्रतिपक्ष भावनका स्वरूप कथन करते हैं:—

वितर्का हिंसादयः कृत कारिता नुमोदिता लोभ क्रोध मोह पूर्वका मृदुमध्याधि मात्रा दु खा ज्ञानानन्त फला इति प्रति पक्ष भावनम् ॥ ३४ ॥

लोभ; क्रोध तथा मोह से होने वाले कृत कारित तथा अनुमोदित भेद से तीन प्रकारके मृदु, मध्य; अधिमात्र धर्म वाले हिंसा, मिथ्या भाषण, स्तेय, आदि का नाम वितर्क और यह सब असीम दुःख तथा अज्ञानके देने वाले हैं इसविचार का नाम प्रतिपक्ष भावन है। हिंसा, मिथ्या भाषण स्तेय, चोरी, आदिका नाम "वितर्क" है और यह हिंसा आदिकृत, कारित तथा अनुमोदित भेदसे तीन प्रकार के हैं। जो स्वयं किये जांय वह "कृत" जो अन्यसे किये जाँय वह "कारित" और जो साधु २ ठीक २, इसकी अनुमति से किये जाँय उनको "अनुमोदित" कहते हैं। यह तीनों प्रकारके हिंसादि कर्म लोभ, मोह तथा क्रोधसे उत्पन्न होते हैं। मांसचर्मादिकी तृष्णाका नाम "लोभ" इसने मेरा अपकार किया मैं भी इसका अपकार करूँ, इस प्रकार अपकार करने की इच्छा से उत्पन्न हुई कर्त्तव्या कर्त्तव्य विवेकको नाश करनेवाली द्वेषात्मक तामस चित्तवृत्ति का नाम " क्रोध " और यज्ञादिमें पशु आदिके मारनेसे धर्म होता है ऐसा मिथ्या ज्ञानका नाम "मोह" है। यह लोभ मोहादिक तीनों कारण भी मृदु, मध्य, अधिमात्र इस भेदसे एक २ तीन प्रकारका है और मृदु, मध्यादि भेद भी मृदु, मध्य, अधिमात्र इस भेदसे एक २ तीन २ प्रकारका है, यह सब मिलकर २७ होते हैं, इस प्रकार लोभ आदि कारणोंके २७ भेद होनेसे हिंसादि वितर्कोंके ८१ भेद हैं। जो पुरुष इनको करता है, वह अनन्त काल तक दुःखमय संसार तथा अन्धतम को प्राप्त

होता है और किसी प्रकार दुःखोंसे नहीं छूट सकता। अब अनुष्ठान द्वारा प्राप्त हुई यमनियमों की सिद्धिका चिन्ह निरूपण करते हैं:—

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ॥ ३५ ॥

अहिंसाके सिद्ध होनेपर उस योगीके समीपवर्त्ती विरोधी जीवोंका भी विरोध निवृत्त हो जाता है। अर्थात् जिस योगी का महाव्रत रूप अहिंसा यम सिद्ध हो गया है उसके समीप रहनेवाले विरोधी जीव भी विरोधका परित्याग कर देते हैं। इस प्रकारके विरोधशील जीवभी परस्पर विरोध न करें और मित्र भावको प्राप्त हो जावें तब अहिंसाको सिद्ध हुआ जानना चाहिये; यह उसके सिद्धिका चिन्ह है। अब सत्यकी सिद्धिका चिन्ह कथन करते हैं: -

सत्यप्रतिष्ठायांक्रियाफलाश्रयत्वम् ॥ ३६ ॥

सत्यके सिद्ध होनेपर योगीकी वाणी क्रिया तथा फलका आश्रय हो जाती है। यदि वह अधार्मिक पुरुषको भी अपनी वाणीसे धार्मिकोभव=तू धार्मिक होजा, ऐसा कहदे तो वह धार्मिक हो जाता है और दुःखी को सुखी भव=सुखी हो जा, इस प्रकार कहदे तो वह उसके कथनानुसार आचरण करनेसे सुखी हो जाता है, इसको क्रियाका फल तथा फलका आश्रय होना कहते है। ऐसा हो जाने पर जानो कि सत्यसिद्ध हुआ, यह सत्य सिद्धिका चिन्ह है। अब अस्तेय सिद्धिका चिन्ह कथन करते हैं:—

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥ ३७ ॥

अस्तेयके सिद्ध हो जानेपर चारों दिशाओंमें होनेवाले रत्नादि सम्पूर्ण पदार्थ स्वयमेव प्राप्त हो जाते हैं। भाव यह है कि अस्तेय (चोरी त्याग) की प्रतिष्ठासे योगी विश्वासाई हो जाता है। जब इस प्रकार सिद्धास्तेय योगीके पास देश देशान्तरोंसे रत्नादि सम्पूर्ण पदार्थ सङ्कल्प मात्रसे उपस्थित हो जाँय तब

जानना चाहिये कि अस्तेय प्रतिष्ठित अर्थात् सिद्ध हो गया, यह उसकी सिद्धिका चिन्ह है। अब ब्रह्मचर्यकी सिद्धिका चिन्ह कथन करते हैं:—

ब्रह्मचर्य्य प्रतिष्ठायांवीर्यलाभः ॥ ३८ ॥

ब्रह्मचर्य्य सिद्ध होनेपर बलकी प्राप्ति होती है। आत्मिक तथा शारीरिक भेदसे बल दो प्रकारका है, ब्रह्मचर्यकी सिद्धि-वाले योगीको दोनों प्रकारका बल प्राप्त होता है। "ब्रह्मचर्य्येण तपसा देवा मृत्यु मुपाघ्नत" अथ० ११।५।१६ ब्रह्मचर्य्यके प्रभाव से ही विद्वान् मृत्युको जय करते अर्थात् दीर्घायु होते हैं। उक्त प्रकारकी सामर्थ्य प्राप्त होनाही उसकी सिद्धिका चिन्ह है। अब अपरिग्रहकी सिद्धिका चिन्ह कथन करते हैं:—

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्म कथंतासंबोधः ॥ ३६ ॥

अपरिग्रह सिद्ध होनेपर जन्मके कथभावका ज्ञान होता है। मनुष्य जन्म किस प्रकार सफल हो सकता है और इसलिये किस प्रकारके योगक्षेमकी आवश्यकता है, वा थी, वा होगी, इस प्रकारके ज्ञानका नाम "जन्मकथंतासंबोध" है, जिस योगी का अपरिग्रह सिद्ध हो जाता है उसको जन्मकथंता संबोधकी प्राप्ति होती है यही अपरिग्रहका चिन्ह है। अब बाह्य शौचकी शुद्धिका चिन्ह कथन करते हैं:—

शौचात्स्वाङ्ग जुगुप्सा परैर संसर्गः ॥ ४० ॥

बाह्यशौचकी सिद्धि होनेपर अपने शरीरमें ग्लानि तथा दूसरोंके साथ असम्बन्ध होता है। व्यास भाष्यमें कहा है कि:—

स्थानाद् बीजा दुपष्टम्भान्निः स्पन्दान्निधनादपि।
कायमाधेय शौचत्वात्पण्डिताह्य शुचिं विदुः॥ व्या० भा० २।५

अर्थ—रक्त वीर्यसे बनने, गर्भाशयमें रहने, रुधिर तथा अस्थिमय होने, नासिकादि सर्व छिद्रों द्वारा मलके बहने, मृत्यु द्वारा अस्पृश्य और कल्पित शौचका आश्रय होनेसे इस शरीरको पण्डित लोग अशुचि कहते हैं। इस प्रकार अशुचि बुद्धिके

उत्पन्न होनेसे शरीरमें ग्लानि और ग्लानीसे देहाध्यासकी निवृत्ति होती है, ऐसा होनेसे दूसरोंके साथ सम्बन्धकी इच्छा नहीं रहती अर्थात् एकान्त वासी होकर आत्म-ध्यानमें तत्पर हो जाता है। तात्पर्य यह है कि देहाध्यासकी निवृत्ति तथा एकान्त सेवन यह दोनों बाह्यशौच सिद्धिका चिन्ह हैं। अब आभ्यन्तर शौच सिद्धिका चिन्ह कथन करते हैं:—

सत्त्व शुद्धि सौमनस्यैका ग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानिच ॥ ४१ ॥

और आभ्यन्तर शौच सिद्ध हो जानेसे सत्त्वशुद्धि, सौमनस्य, ऐकाग्र्य, इन्द्रिय जय और आत्मदर्शन योग्यताकी प्राप्ति होती है। चित्तशुद्धिका नाम "सत्त्वशुद्धि" शुद्धिकी अधिकता नाम "सौमनस्य" ईश्वरमें एकतान चित्तका नाम "ऐकाग्र्य" इन्द्रियोंका अपने अधीन हो जानेका "इन्द्रिय जय" और विवेक ज्ञानके योग्य होनेका नाम "आत्मदर्शन योग्यत्व" है। जब योगी मैत्री आदि भावनाओंका निरन्तर अभ्यास करता है तब इसके रागादिक चित्तमल निवृत्त होकर चित्त शुद्ध हो जाता है और चित्तकी शुद्धि होनेसे स्फटिक की भाँति नितान्त स्वच्छ हुआ एकाग्र होता है और एकाग्रताके अनन्तर योगीको इन्द्रिय जय तथा विवेक ख्याति की योग्यता प्राप्त होती है। यही आभ्यन्तर शौचकी सिद्धिका चिन्ह है। अब सन्तोष सिद्धिका चिन्ह कथन करते हैं:—

सन्तोषादनुत्तम सुख लाभः ॥ ४२ ॥

सन्तोष सिद्ध होनेपर योगीको अनुत्तम सुखकी प्राप्ति होती है। जिस सुखसे अन्य कोई सुख उत्तम नहीं उसको "अनुत्तम सुख" कहते हैं. संतोषकी सिद्धि होनेसे योगीको ऐसे सुखका लाभ होता है, जैसा कि मनुजीने भी कहा है कि:-

सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् ।

सन्तोष मूलंहि सुखं दुःखमूलं विपर्य्ययः ॥ मनु० ४।२२

अर्थ—पुरुषको सन्तोषसे ही अनुत्तम सुख प्राप्त हो सकता है असन्तोषसे नहीं क्योंकि सन्तोष ही अनुत्तम सुखका मूल है और इसके विपरीत तृष्णा दुःखोंका मूलकारण है इसलिये अनुत्तम सुखकी इच्छा वाला पुरुष सन्तोषका सेवन करे। अनुत्तम सुखकी प्राप्ति ही सन्तोष सिद्धिका चिन्ह है। अब तप सिद्धिका चिन्ह कथन करते हैं:—

कायेन्द्रिय सिद्धि रशुद्धि क्षयात्तपसः ॥ ४३ ॥

तपकी सिद्धि होनेसे अशुद्धि क्षयके अनन्तर योगीको शरीर तथा इन्द्रिय सिद्धिकी प्राप्ति होती है। शरीरके=सर्वथा स्वस्थ हो जानेका नाम "काय सिद्धि" और दूरदर्शी तथा निकटवर्ती शब्दादि निखिल विषयोंके यथार्थ ग्रहण करनेकी शक्तिका नाम "इन्द्रिय सिद्धि" है रोगादिकसे शरीरकी तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रसादि विषयोंके यथार्थ ग्रहणकी अशक्ति इन्द्रियोंकी अशुद्धि कहलाती है। इन दोनों शक्तियोंका प्राप्त होना तप सिद्धिका चिह्न है। अब स्वाध्याय सिद्धिका चिह्न कथन करते हैं: ॥ ४३ ॥

स्वाध्यायादिष्ट देवता संप्रयोगः ॥४४॥

स्वाध्यायके सिद्ध होनेसे इष्टदेव परमात्माका दर्शन होता है। अर्थात् परमात्मामें मनका स्थित होना स्वाध्याय सिद्धि का चिह्न है। अब ईश्वर प्रणिधान सिद्धिका चिह्न कथन करते हैं: ॥४४॥

समाधि सिद्धिरीश्वर प्रणिधानात् ॥ ४५ ॥

ईश्वर प्रणिधान सिद्ध होनेसे समाधिकी प्राप्ति होती है। भाव यह है कि ईश्वरके प्रणिधान भक्ति विशेषसे निर्विघ्नता पूर्वक सिद्ध हुए यम, नियमादि योगके अङ्गों द्वारा शीघ्र ही योगीको समाधिका लाभ होता है। अब आसनका लक्षण कहते हैं—

स्थिर सुखमासनम् ॥४६॥

स्थिर तथा सुखदाई का नाम आसन है। 'सिद्धासन, पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, स्वस्तिकासन इत्यादि अनेक प्रकारके आसन हैं। इन आसनोंमें से जिसके द्वारा योगीको निश्चलता तथा सुखकी प्राप्ति हो वही आसन अनुष्ठेय है। अब आसन सिद्धिका उपाय कथन करते हैं:—

प्रयत्न शैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् ॥ ४७ ॥

स्वभाविक प्रयत्नकी शिथिलता और पशु पक्षी सरीसृप=सर्पगोह आदि प्राणियोंके अनन्तविध आसनोंको चिन्तन करनेसे आसनकी सिद्धि होती है। स्वभावसिद्ध प्रयत्नके न्यून कर देनेका नाम "प्रयत्न शैथिल्य" और अनेक विध प्राणियों के आसनकी भावनाका नाम "अनन्त समापत्ति" है जब योगी निरन्तर प्राणियोंके आसन अर्थात् बैठनेके प्रकारके चिन्तन करता हुआ स्वयं आसन लगानेकी चेष्टा करता है और आसनके समय अपने स्वभाविक प्रयत्नको शिथिल कर देता है तब इसका आसन सिद्ध होता है अर्थात् जिस प्रकारका आसन लगाना चाहे लगा सकता है। अब आसन सिद्धिका फल कथन करते हैं: ॥४७॥

ततोद्वन्द्वानभिघातः ॥४८॥

आसनके सिद्ध होनेसे शीत उष्णादि द्वन्द्वोंका प्रतिकूल सम्बन्ध नहीं होता। जब योगीका आसन सिद्ध हो जाता है तब इसको शीत उष्णादि द्वन्द्व नहीं सताते। अब प्राणायाम का लक्षण कथन करते हैं ॥४८॥

तस्मिन् सति श्वास प्रश्वास योर्गति विच्छेदः प्राणायामः ॥४९॥

आसनकी सिद्धि होने पर श्वास, प्रश्वासकी गतिके अभावका नाम प्राणायाम है। बाहरकी वायुका भीतर जाना "श्वास" और भीतरकी वायुका बाहर आना "प्रश्वास" कहलाता है। योग शास्त्रकी रीतिसे इन दोनोंकी गतिके अभावको

प्राणायाम कहते हैं। अब अवान्तर भेदोंके सहित उक्त प्राणायामका निरूपण करते हैं ॥ ४९ ॥

बाह्याभ्यान्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टोदीर्घ सूक्ष्मः ॥ ५० ॥

वाह्यवृत्ति, आभ्यान्तरवृत्ति, तथा स्तम्भवृत्ति इन भेदसे प्राणायाम तीन प्रकारका है और वह देश, काल तथा संख्या द्वारा परीक्षा किया हुआ दीर्घ सूक्ष्म कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि जैसे धुनी हुई रुई फैलकर दीर्घ तथा सूक्ष्म हो जाती है वैसे ही अभ्यास द्वारा देश कालादिकी वृद्धिसे वर्द्धित हुआ प्राणायामभी दीर्घ तथा सूक्ष्म हो जाता है इसी कारण योगी लोग उसको प्राणायाम कहते हैं। बाहर भीतरके देशका नाम "देश" क्षणोंकी इयत्ताका नाम "काल" और मात्राकी इयत्ताका नाम "संख्या" है। वमनके समान वायु दोनों नासिका पुटसे फेंकने का नाम "वाह्य वा रेचक "प्राणायाम" वायुको धीरे २ भीतर भरनेको"आभ्यान्तर वा पूरक प्राणायाम" भीतर लिये हुए वायु को रोकनेका नाम "स्तम्भवृत्ति वा कुम्भक" 'प्राणायाम जानना चाहिये। अब उक्त तीनों प्राणायामों के फल भूत चतुर्थ प्राणायाम का निरूपण करते हैं: —

वाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी चतुर्थः ॥ ५१ ॥

रेचक, पूरक प्राणायामकी अपेक्षासे रहित प्राणायामका नाम "वाह्य विषय" और पूरकका नाम "आभ्यान्त विषय"है ॥ विषय देश यह दोनों पर्य्याय शब्द हैं, अतिक्रमणको "आक्षेप" कहते हैं और आक्षेपशील का नाम "आक्षेपी" है, जिसका प्राणायाममें रेचक तथा पूरक प्राणायामके अतिक्रमणसे प्राणों का निरोध होता है अर्थात् जिस प्राणायाममें दोनोंकी अपेक्षा से रहित घटी लेवरकी भांति असकृत (बार बार) प्रयत्नसे शनैः १ प्राणायाम स्थित होते हैं उसको "चतुर्थ प्राणायाम"

३

कहते हैं। इसका दूसरा नाम "केवल कुम्भक" प्राणायाम है। अब प्राणायामका फल कथन करते हैं:—

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥५२॥

प्राणायामसे बुद्धिसत्वका आच्छादक क्लेश तथा पाप क्षीण हो जाते हैं। बुद्धि सत्वका नाम "प्रकाश" और उसमें होने वाले विवेक ज्ञानके प्रतिबन्धक अविद्यादि क्लेश तथा तन्मूलक पापोंका नाम "आवरण" है। जब योगीका प्राणायाम प्रतिष्ठित होता है तब उक्त दोनों आवरण क्षीण हो जाते हैं और क्षीण होनेसे पुनः विवेक ज्ञानके प्रतिबन्धक नहीं होते। अब अन्य फल कहते हैं: ॥५२॥

धारणासु च योग्यता मनसः ॥५३॥

और धारणाओंमें चित्तकी (योग्यता)सामर्थ्य हो जाती है। अर्थात् प्राणायामके सिद्ध होनेसे चित्त धारणाके योग्य हो जाता है। चित्तका विक्षिप्त न होना ही प्राणायाम सिद्धिका चिह्न है। अब प्रत्याहारका लक्षण करते हैं:—

स्वविषया संप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकारइवेन्द्रियाणांप्रत्याहारः ॥ ५४ ॥

अपने २ विषयोंके साथ सम्बन्धन होनेके कारण इन्द्रियों की चित्तस्थितिके समानस्थितिका नाम प्रत्याहारहै। तात्पर्य्य यह है कि इन्द्रियोंका वाह्य विषयोंमें जाना सहज स्वभाव है, उस सहज स्वभावके विपरीत अन्तमुर्ख होने को प्रत्याहार कहते हैं।

ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम् ॥ ५५ ॥

प्रत्याहारके सिद्ध होनेसे इन्द्रियें अत्यन्त वश हो जाती हैं अर्थात् उसको इन्द्रियजयकी प्राप्ति होती है।

आदौ योग स्तथा क्लेशा मध्ये व्यूह चतुष्टयम्।
योगाङ्ग पञ्चकं चान्ते पादेस्मिन्नुपवर्णितम्॥

अर्थ—आदिमें योग तथा क्लेशोको मध्यमें व्यूह चतुष्टय १ हेय २ हान ३ ग्राह्य और ४ ग्रहण कारण) पश्चात् योगाङ्ग के पाँच अङ्गोको आचार्यने समाप्त किया शेषाङ्ग ३ को तीसरे पादमें कहेंगे।

॥ इति योग दर्शन भाषानुवादे द्वितीयः साधनपादः ॥



* ओ३म् *

अथ तृतीय विभूतिपादः प्रारभ्यते



पूर्वपादमें योगके बहिरङ्ग ५ अङ्गों (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, और प्रत्याहार) का वर्णन हुआ, अब शेष तीन अन्तरङ्ग अङ्गों (धारणा, ध्यान और समाधि) मेंसे छठी धारणा का वर्णन करते हैं:—

देश बन्धश्चित्तस्य धारणा ॥१॥

चित्तका (किसी नाभिचक्र, हृदय कमल, मूर्द्धा, भ्रूमध्य, नेत्र कोण, नासिकाग्र इत्यादि) देशमें बान्धना धारणा कहाती है। अपने देहके अवयवोंको छोड़कर चन्द्र, सूर्य्य, तारा आदि में वा किसी भी एक देशमें चित्त लगाना धारणा है। अब ध्यान का लक्षण करते हैं: ॥१॥

तत्र प्रत्ययैक तानताध्यानम् ॥२॥

उस (धारणा) में प्रत्यय (ज्ञान) का एकसा रहना ध्यान है। योगीके चित्तमें जो ध्येय मात्रको विषय करने वाली विजातीय वृत्तियोंके व्यवधानसे रहित सजातीय वृत्तियोंकी एकतानता (एकसा रहना) उसका नाम "ध्यान" है। अब समाधि का लक्षण करते हैं:—

तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूप शून्य मिव समाधिः ॥३॥

यही (ध्यान) जब उसमें अर्थ (जिस देशमें ज्ञान एकसा हुआ हो) मात्रका प्रकाश हो और अपने रूपसे शून्यसा हो जावे, उसको समाधि कहते हैं। जैसे 'रक्तपुष्पकी समीपतासे स्फटिक मणि अपने श्वेत रूपको त्याग कर केवल पुष्पके रक्त रूपसे रक्त प्रतीत होती है वैसेही ध्यानभी प्रति दिनके अभ्यास द्वारा अपने ध्यानात्मका रूपको त्याग कर केवल ध्येय रूपसे प्रतीत होता है तब उसको "समाधि" कहते हैं। योगीको उक्त समाधिके अभ्याससे ध्येय, अध्येय सर्व पदार्थोंका हस्तामलक वत् साक्षात्कार होताहै उसको "सम्प्रज्ञात समाधि" कहते हैं। अब योग शास्त्रके अनुसार उक्त तीनोंकी संज्ञा कथन करतेहैं:-

त्रयमेकत्र संयमः ॥४॥

एक विषयमें होने वाले तीनोंका नाम संयम हैं। तात्पर्य यह हैं कि जब धारणा ध्यान, तथा समाधिका समान विषयहो तब योग शास्त्रमें इनका नाम "संयम" है ॥ ४ ॥ अब संयम सिद्धि का फल कथन करते हैं:—

तज्जयात्प्रज्ञाऽऽलोकः ॥५॥

संयमके सिद्धहो जानेसे योगीको प्रज्ञालोक (निर्मल प्रवाह में बुद्धिकी स्थिरता) प्राप्त होती है। इसका फल यहकि बुद्धि निर्मल हो जाती है. उसमें मल न रहनेसे दूरस्थ वा दीर्घ कालान्तरित विषयोंकाभी सम्यक् ज्ञान हो जाता है ॥५॥

तस्य भूमिषु विनियोगः ॥ ६ ॥

उस (संयम) का सवितर्कादि योग भूमियोंमें विनियोग है। विनियोग नाम सम्बन्ध का है. प्रथम पादमें सवितर्क. निर्वितर्क आदि भेदसे चार प्रकारकी योग भूमियोंका निरूपण किया है। उन भूमियोंमें संयमका सम्बन्ध होनेसे योगीको प्रज्ञा लोक की प्राप्ति होती है ॥ ६ ॥ अब धारणादि तीनोंको सम्प्रज्ञात योगका अन्तरङ्ग साधन कथन करते हैं:—

त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्यः ॥ ७ ॥

धारणा, ध्यान, समाधि यह तीनों यम, नियम, आसन, प्राणायाम प्रत्याहार इन पांचों की अपेक्षा संप्रज्ञात योग के अन्तरङ्ग साधन हैं। जिस अङ्ग का विषय अपने अङ्गीके समान है उसको "अन्तरङ्ग" और दूसरेको "बहिरङ्ग" साधन कहते हैं। इसलिये यमादिक परस्पर या साधन होनेसे बहिरङ्ग और धारणादि तीनों साक्षात् साधन होनेसे योगके अन्तरङ्ग अङ्ग हैं। अब उक्त धारणादि तीनोंको निर्बीज योगका बहिरङ्ग अङ्ग कथन करते हैं:—

तदपि बहिरङ्ग निर्बीजस्य ॥ ८ ॥

धारणादि तीनों भी निर्बीज (असंप्रज्ञात योग) के बहिरङ्ग साधन हैं। धारणा; ध्यान, समाधिका निरूपण करके अब तत्साध्य बिभूतियों का निरूपण करने के लिये उनके विषय परिणाम त्रयका निरूपण करते हुये प्रथम प्रसङ्ग सङ्गतिसे असम्प्रज्ञात कालमें होनेवाले निरोधरूप चित्त परिणामका स्वरूप दिखाते हैं: –

व्युत्थान निरोध संस्कार योरभिभवप्रादुर्भावौ निरोध क्षण चित्तान्वयो निरोध परिणामः ॥ ९ ॥

व्युत्थान संस्कारका छिपना और निरोध संस्कारका प्रकट होना और निरोध क्षणके चित्तमें जिसका अन्वयहो, उसको निरोध परिणाम कहतेहैं। चित्तके ३ परिणाम हैं। उनमें निरोध परिणाम वह है जिसका निरोध समय (क्षण) के चित्तसे सम्बन्ध है और जिसमें व्युत्थान (चित्तको क्षिप्त, मूढ़; विक्षिप्त भूमिकाओं) के संस्कारका तिरोभाव और निरोधके संस्कारका प्रादुर्भाव हो। इसमें, निरोध परिणामः, लक्ष्य है, 'निरोधक्षण चित्तान्वयः' उसका विशेषण है, और 'व्युत्थान निरोधसंस्कार योरभि भव प्रादुर्भावौ' लक्षण है। अब प्रादुर्भूत हुए निरोध संस्कारोंका फल कथन करते हैः—

तस्य प्रशान्त वाहिता संस्कारात् ॥ १० ॥

निरोधरूप संस्कारों से चित्तको प्रशान्त वाहिता की प्राप्ति होती है। अर्थात् व्युत्थान संस्कार के दबने और निरोध संस्कार के उभरते रहनेसे जो निरोधाभ्यास का संस्कार होता है, उस संस्कार से चित्तका बहाव प्रशान्त (एकरस) हो जाता है। अब दूसरे सम्प्रज्ञात समाधि में होनेवाले चित्त परिणाम का कथन करते हैं:—

सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौचित्तस्य समाधिपरिणामः॥ ११॥

जिसकी सर्वार्थता (सब विषयों में दौड़) का क्षय और एकाग्रता (किसी एक विषय में लाग) का उदय होना (और समाधि समर्थक चित्तसे जिसका सम्बन्ध हो वह) समाधि परिणाम है। प्रतिक्षण अनेक विषयों में चित्तके गमनका नाम " सर्वार्थता " और एक ईश्वर में चित्तकी स्थितिका नाम "एकाग्रता" है, तिरोभावका नाम "क्षय" तथा प्रादुर्भाव का नाम " उदय " है। जब योगीको सम्प्रज्ञात समाधिकी प्राप्ति होती है तब समाहित चित्तमें सर्वार्थता धर्मके क्षय पूर्वक जो एकाग्रता धर्म उदय होता है उसको "समाधि परिणाम" कहते हैं। अब एकाग्रता परिणाम का लक्षण करते हैं:—

ततः पुनः शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रता परिणामः॥ १२॥

सर्वार्थता के क्षय होनेपर फिर चित्तमें समान प्रकारके अतीत तथा वर्तमान प्रत्ययों के उदयका नाम एकाग्रता परिणाम है। अतीतका नाम "शान्त" वर्त्तमानका नाम " उदित " और एकही विषय में होनेवाले प्रत्ययोंका नाम "तुल्य प्रत्यय" है। वृत्ति, प्रत्यय यह दोनों पर्याय शब्द हैं। तात्पर्य यह है कि व्युत्थान प्रत्ययके निवृत्त होनेपर चित्तमें एकतान प्रत्ययोंके उदयका नाम एकाग्रता परिणाम है। अब चित्तकी भाँति भूतादिक पदार्थों में भी उक्त तीन प्रकारके परिणामोंका निरूपण करते हैं:—

एतेनभूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याताः॥१३॥

चित्तके समान भूत और इन्द्रियों में धर्म परिणाम, लक्षण परिणाम, अवस्था परिणाम यह तीनों परिणाम जानने चाहिये। पृथिवी आदिका नाम 'भूत' और चक्षु आदिका नाम "इन्द्रिय" है। उनमें पहला परिणाम धर्म परिणाम है। जैसे पृथिवीका परिणाम घट, पट, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि। इसी प्रकार दूसरा जो लक्षण (कालभेद) से है, वह लक्षण परिणाम है, इस दूसरे परिणाम से पहला धर्म परिणाम अलग नहीं होता। जैसे मृत्तिकाके पिण्डसे कपाल, कपालों से घट, कपास से सूत, सूतोंसे पट (वस्त्र) इत्यादि धर्मपरिणाम दूसरे लक्षण परिणाम में भी साथ रहते हैं अलग नहीं होते। पूर्व घट, वर्तमान् घट, भविष्यद् घट, पूर्व गौ, वर्तमान गौ, भविष्यत् होने वाले गौ। इन दोनों धर्मपरिणाम, लक्षण परिणामोंको साथ लिये हुवे तीसरा अवस्था परिणाम होता है। जैसे जवान गौ मनुष्य पक्षी, बूढ़े मनुष्य पशु पक्षी आदि वा पुराना नया घट इत्यादि। ऐसेही आँख आदि धर्मपरिणाम, फिर भूत भविष्यत् वर्तमान् के भेदसे लक्षण परिणाम और स्पष्ट अस्पष्ट धुन्धला देखना आदि अवस्था परिणाम हैं। इसी प्रकार यह तीनों परिणाम चित्त धर्मीमें होते हैं। इन तीनोंमें एक अवस्था परिणामही मुख्य है और धर्म परिणाम तथा लक्षण परिणाम यह दोनों इसीका भेद विशेष है। क्योंकि मृत्तिका ही पूर्व काल तथा पूर्वावस्था को त्याग कर कालान्तर में अवस्थान्तर को प्राप्त हुई घटनाम से कही जाती है वस्तुतः घट मृत्तिका से कोई अन्य पदार्थ नहीं, ऐसाही सब पदार्थोंमें जानना चाहिये। इसलिये धर्मी मात्रमें होने वाला एकही अवस्था परिणाम अवान्तर भेदसे तीन प्रकारका कथन किया है। जिस धर्मीमें उक्त तीन परिणाम होतेहैं अब उसका स्वरूप कथन करते हैं:—

शान्तोदिता व्यपदेश्य धर्मानुपाती धर्मी॥ १४॥

जो धर्म हो चुके, वे शान्त; जो वर्तमान हैं, वे उदित और जो होवेंगे, अव्यपदेश्य (बताये वा निर्देश नहीं किये जा सकते हैं किये हैं), इन तीनों धर्मोंसे जिसका अन्वय अनुपतन वा सम्बन्ध होना है वह धर्मी है। अर्थात् मृत्तिकामें जो पीण्ड, कपाल, घटादिके उत्पन्न करनेकी योग्यता रूप शक्ति है जिससे घटादि धर्म अनागत से वर्तमान और वर्तमानसे अतीतावस्था को प्राप्त होते रहते हैं उसको "धर्म" और उक्तशक्तिके आश्रय मृत्तिकाको "धर्मी" कहते हैं। यहाँ इतना स्मरण रहे कि अनागतके अनन्तर वर्तमान और वर्तमानके अनन्तर अतीत (हो चुके) परिणाम होता है परन्तु अतीतके अनन्तर वर्तमान नहीं होता क्योंकि अनागत तथा वर्तमानका नहीं ॥१४॥ अब उक्त परिणामोंका नाना भेद होनेमें हेतु, कथन करते हैं:—

क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः ॥ १५ ॥

धर्म परिणाम, लक्षण परिणाम तथा अवस्था परिणामके नाना भेद होनेमें उनके क्रमका भेद कारण है। भाव यह है कि जैसे एक धर्मीमें प्रथम धर्मके अनन्तर धर्मान्तरको होना विना क्रम नहीं हो सकता वैसेही धर्मोंका प्रथम कालसे कालान्तर की तथा एक अवस्थासे अवस्थान्तरकी प्राप्ति भी विना क्रम नहीं हो सकता और वह क्रम नाना है, इसलिये उक्त तीनों परिणाम भी नाना हैं। क्योंकि पहले मिट्टी, उससे पीछे सनी मट्टीका पिंड, उससे पीछे कपालद्वय, उससे पीछे घट, इसी प्रकार प्रथम बिनोला, फिर उसका वृक्ष, फिर कपास, फिर रूई, फिर तार (सूत), फिर पट (वस्त्र) इत्यादि प्रकार क्रमसे एक २ धर्मोंको अगला २ धर्म परिणाम होता है, इस लिये परिणामके बहुत भेदोंका कारण क्रमका भेद है अर्थात् क्रम भेदसे मिट्टी धर्मी पिण्ड धर्म, पिण्ड धर्मी कपालद्वय धर्म, कपालद्वय धर्मी घट धर्म परिणाम हुआ। ऐसे ही बिनौले से वस्त्र तक परिणामकी भिन्नता है। इसमेंसे धर्म परिणाम

तो कभी २ होता है, प्रतिक्षण नहीं होता, परन्तु लक्षण परिणाम और अवस्था परिणाम प्रति क्षण नियमसे होते ही रहते हैं। तीनों परिणाम विवेकसे प्रति पादन किये गये। अब तीनों परिणामोंके संयम (देखो सूत्र ४) का फल (सिद्धि) बताते हैं।

परिणाम त्रय संयमा दतीताऽनागत ज्ञानम् ॥१६॥

तीनों परिणामोंके संयमसे भूत भविष्यत्का ज्ञान होता है। जब धारणा ध्यान और समाधि रूप संयमसे किसी विषयको योगी प्रतीत करता है तो उसके धर्म परिणाम, लक्षण परिणाम और अवस्था परिणामोंमें पूरा २ संयम करनेसे उस २ पदार्थ की भूत और भविष्यत् स्थिति योगीको ज्ञात हो जातीहै ॥१६॥

सिद्धियां वा विभूतियां का वर्णन

यहाँसे सिद्धियों वा विभूतियोंका आरम्भ है। इन विभूतियोंके संभव असंभव पर अनेक लोग तर्क करते हैं, परन्तु जो विषय अनुभव गम्य है उसपर केवल तर्कसे काम नहीं चल सकता। किसी पदार्थकी धारणाही कितना कठिन काम है, कि चित्तका सर्वथा देश विशेषमें बांध देना, फिर ध्यान उससे भी कठिन है जिसमें एकसाही प्रत्यय (ज्ञान) बना रहे, अन्तमें समाधि उससे भी गहन है कि जिससे चित्त इतना उस ध्येय विषयमें लग जावे कि आपेको भूलकर शून्यसा हो जावे, और विषयाकार बनकर केवल विषयकाही प्रकाश रह जावे. भला जब इतना किसी पदार्थका ग्रहण किया जावे तब उसकी भूत भविष्यत दशाओंका जानना असंभव क्या है। तत्वोंका अन्वेषण करने वालोंने वर्तमान कठिन भूमि पिण्ड (पृथीवीके गोले) को देखकर उसकी पूर्वावस्था पिघली हुई का ज्ञान कर लिया, अन्तमें वह जल रहित शुष्क हो जायगी जैसे चन्द्रमा प्रथम तप्तथा, फिर जलमय हुआ, अब शुष्क हो गया इत्यादि जान लिया, तब योगीको चित्तके वशीभूत करने

पर अतीताऽनागतका ज्ञान क्या बड़ी बात है। इसी प्रकार अन्य विभूतियों पर भी अनुमान द्वारा अयोगी भी योगीकी सिद्धियों पर श्रद्धा ला सकते हैं। द्र०—इस पादमें जितने सूत्र विभूतियोंके आवेंगे केवल उनके सूत्रार्थ लिखे जावेंगे, योगाभिलाषियों के लिये योग-साधन-माला द्वारा पृथक् "सच्ची विभूति" नामक पुस्तक जिसमें प्रत्येक विभूतियों पर विशेष रूपसे व्याख्याकर शीघ्र प्रकाशित की जावेगी। अब संयम से होने वाली दूसरी विभूतिका निरूपण करते हैं:—

शब्दार्थ प्रत्ययानामितरेतराध्यासात्संकरस्तत् प्रविभाग संयमात्सर्वभूतरुत ज्ञानम् ॥ १७॥

शब्द, अर्थ और प्रत्यय (ज्ञान) में परस्पर अन्यको अन्य समझने से (सबका) संकर (एकमेक) हो जाता है, (परन्तु) उन (शब्द, अर्थ ज्ञानों) के विभागमें संयम करने से सब प्राणियोंकी बोली ज्ञात हो जाती है।

संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्व जाति ज्ञानम् ॥ १८ ॥

संयम द्वारा संस्कारों के साक्षात्कार होने से पूर्व जन्म का ज्ञान होता है। अब चौथी विभूति कहते हैं:—

प्रत्ययस्य परचित्त ज्ञानम् ॥ १९ ॥

संयम द्वारा पर पुरुष की चित्तवृत्तिका साक्षात्कार होनेसे परके चित्तका ज्ञान होता है। अब पांचवी विभूति कहते हैं:—

काय रूप संयमात्तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुःप्रकाशाऽसंप्रयोगेऽन्तर्धानम् ॥ २० ॥

देहके रूप (चक्षुर्ग्राह्य विषय) में संयम करनेसे ग्राह्यशक्ति थंभ जानेपर आँखके प्रकाशसे संयोग न रहे तब (योगीको) अन्तर्धान (दृष्टिगोचर न होनेकी) सिद्धि हो जाती है। अब छठी विभूति कहते हैं:—

सोपक्रमं निरूपक्रमं च कर्म, तत्संयमादऽपरान्त ज्ञान मरिष्टेभ्यो वा ॥ २१ ॥

सोपक्रम, निरूपक्रम भेदसे कर्म दो प्रकारके हैं उनमें संयम करने (धारणा, ध्यान, समाधि) करनेसे अथवा अरिष्टोंके देखनेसे मृत्युका ज्ञान हो जाता है। जो कर्म शीघ्र शीघ्र फल देवे "सोपक्रम" जो देरसे फलें देवे "निरुपक्रम" कहाते हैं, इनमें संयम करनेसे आयु कितनी होगी, कहां कब देह छुटेगा, इसका ज्ञान हो जाता है। तथा मरण के चिन्ह जो "अरिष्ट" है उनसे भी उपरोक्त ज्ञान हो जाता है। अब सातवीं विभूति कहते हैं:—

मैत्र्यादिषु बलानि ॥ २२ ॥

मैत्री, करुणा, मुदिता इन तीनों भावनाओंमें संयम करनेसे मैत्री आदि बलकी प्राप्ति होती है। आठवीं विभूति आगे कहते हैं:—

बलेषु हस्ति बलादीनि ॥ २३ ॥

बलोंमें (संयम करने से) हाथी आदि केसे बल होजाते हैं। अर्थात् ब्रह्मचर्यसे वीर्य लाभ करके जब योगी अपने मनो रूप बिद्युत्को संयमकी रीतिसे हाथी आदके बलसे मिलाता है तो हस्तिबलादि बलोंको प्राप्त करता है। नववीं सिद्धिको अगला सूत्र बताता है:—

प्रवृत्त्या लोकन्यासात्सूक्ष्म व्यवहित विप्रकृष्ट ज्ञानम् ॥ २४ ॥

प्रवृत्तिके प्रकाशको (सूक्ष्मादिमें) रखनेसे सूक्ष्म, व्यवहित और दूरका ज्ञान होजाता है। अर्थात् आवश्यक है कि वह सूक्ष्म वा दुरस्थ पदार्थ शब्द प्रमाणादि किसी प्रमाणसे सामान्यतया जाना हो, तब उसमें ज्योतिष्मती प्रवृत्तिका प्रकाश रखनेसे उसका विशेष ज्ञान होगा। अब १० वीं सिद्धि कहते हैं:—

भुवन ज्ञानं सूर्य्ये संयमात् ॥ २५ ॥

सूर्य्यमें संयमसे भुवनका ज्ञान होजाता है। ११ वीं सिद्धि यह है कि:—

चन्द्रे तारा व्यूह ज्ञानम् ॥ २६ ॥

चन्द्रमें (संयमसे ताराओंके व्यूह) (क्रमन्यास) का ज्ञान हो जाता हैं । १२ वीं सिद्धि यह है कि:—

ध्रुवेतद्गति ज्ञानम् ॥ २७ ॥

ध्रुवमें (संयम) से उन (ताराओं) की गतिका ज्ञान हो जाता है । सूर्य्य, चन्द्र और ध्रुव शब्दसे कोई तो देहस्थ सुषुम्णा जैसी नाड़ियोंका ग्रहण करते हैं, कोई लोकान्तरोंका ग्रहण करते हैं "परन्तु प्रत्येक सूत्रोंके सम्बन्धसे शरीरस्थ नाड़ियोंका ही संभव हो सकता है ॥२७॥ १३ वीं सिद्धिमें आगे कहते हैं:-

नाभि चक्रे कायव्यूह ज्ञानम् ॥ २८ ॥

नाभि चक्रमें (संयम) से देहके व्यूह (बनावट) का ज्ञान हो जाता है । १४ वीं विभूति अगले सूत्रमें कही गई है:—

कण्ठकूपे क्षुत्पिपासा निवृत्तिः ॥ २९ ॥

कण्ठकूपमें (संयम) से भूख प्यासकी निवृत्ति हो जाती है । जिह्वाके नीचे सूतसी नाड़ीका नाम तन्तु है, तन्तुसे नीचे का देश कण्ठ कहाता है और कण्ठसे नीचे जो छिद्र वा गढ्ढा है वह कण्ठ कूप कहाता है उसमें जितने समय संयम रक्खेगा उतने समय तक भूख, प्यास न सतावेगी । ॥ २९ ॥ १५ वीं विभूति कहते हैं:--

कूर्म नाड्यां स्थैर्यम् ॥ ३० ॥

कूर्म नाड़ीमें (संयमसे) स्थिरता होती है । कण्ठ कूपके नीचे छातीमें कूर्म (कछुवेके शकलकी) नाड़ी है, उसमें संयम करनेसे योगी स्थिर शान्त हो जाता है । जैसे कछुवा अपने अङ्गोंकी चेष्टा रोक कर शान्त बैठ जाता है । १६ वीं सिद्धि आगे कहते हैं:--

मूर्द्ध ज्योतिषि सिद्ध दर्शनम् ॥ ३१ ॥

मूर्द्ध ज्योतिमें (संयम करनेसे) सिद्धोंका दर्शन होता है । सिरके दोनों कपालोंके मध्य ब्रह्मरन्ध्र नामक छिद्र है उस छिद्र के भीतर रहने वाली प्रकाशमय ज्योतिका नाम "मूर्द्ध ज्योति"

है। जब योगी संयम द्वारा मूर्द्ध ज्योतिका साक्षात्कार कर लेता है तब उसको योग सिद्धोंका दर्शन होता है। १७ वीं विभूतिः—

प्रातिभाद्वासर्वम् ॥ ३२ ॥

अथवा प्रातिभ (ज्ञान) से सब (ज्ञान हो जाता है) प्रातिभ उस ज्ञानको कहते हैं जो नैसर्गिक वा स्वाभाविक ज्ञान है जब योगी उस स्वाभाविक ज्ञानमें संयम करता है तो पूर्वोक्त सोलहों सिद्धि वा विभूति प्राप्त हो जाती हैं। सिद्ध योगीकी सर्वज्ञता और परमेश्वरकी सर्वज्ञतामें यह अन्तर अवश्य रहता है कि योगी जब जिस पदार्थको जानना चाहे तब उक्त पदार्थको जान लेता है, इसलिये सर्वज्ञ है, परन्तु परमेश्वर सर्वत्रव्यापक होनेसे बिनाही संयमके सदा सबको जानताही रहता है, इसलिये सर्वज्ञ है। १८ वीं विभूति यह है किः—

हृदये चित्त संवित् ॥३३॥

हृदयमें (संयम करनेसे) चित्तका साक्षात्कार हो जाता है। १९ वीं विभूतिः—

सत्त्व पुरुषयोरत्यन्ताऽसङ्कीर्ण योः प्रत्ययाऽविशेषो भोगः परार्थत्वात्स्वार्थ संयमात्पुरुष ज्ञानम् ॥३४॥

बुद्धि सत्त्व और पुरुष जो अत्यन्त भिन्न हैं. उन दोनोंमें अभेद (एकता) प्रत्यय भोग कहाता है, इस भोगके परार्थ होनेसे, स्वार्थ संयम करनेसे पुरुषका ज्ञान होता है। बुद्धिको "सत्त्व" और जीवात्माको "पुरुष" कहते हैं। जिस २ विषयके आकारको प्राप्त हुई शान्त, घोर तथा मूढ़रूप बुद्धिकी वृत्तिका नाम "बुद्धि प्रत्यय" और बुद्धिवृत्तिके साक्षी चिन्मात्र पुरुषको आलम्बन करने वाली बुद्धि वृत्तिका नाम "पुरुष प्रत्यय" है, बुद्धि प्रत्यय तथा पौरुषेय प्रत्ययकी अभेदरूपसे प्रतीतिका नाम "भोग" और बुद्धि प्रत्ययसे भिन्न केवल पौरुषेय प्रत्ययका नाम "स्वार्थ प्रत्यय" है। जब योगी इस स्वार्थ प्रत्ययमें

संयम करता है तब उसको अपने आत्मा पुरुषका साक्षात्कार होता है। अर्थात् केवल आत्माही आत्माका (अपना) अनुभव करता है। २० वीं विभूति स्वार्थ संयमका फल कथन करते हैं:—

ततः प्रातिभ श्रावण, वेदना दर्शास्वादवार्त्ता जायन्ते ॥३५॥

तब प्रातिभ, श्रावण, वेदना, आदर्श, आस्वाद और वार्त्ता (ये ६ सिद्धियां होजाती हैं) पुरुष (आत्म ज्ञान) १-प्रातिभ= दूर तथा व्यवहितका ज्ञान; २-श्रावण=दिव्य शब्द सुननेकी शक्ति; ३-वेदना=दिव्य स्पर्श ग्रहण शक्ति; ४-आदर्श=दिव्य रूप ग्रहण शक्ति ५-आस्वाद=दिव्यरस ग्रहण शक्ति; और ६-वार्त्ता=दिव्यगन्ध ग्रहण शक्ति हो जाती है। इस दशामें योगी विना पाँचों विना पाँचों स्थूल विषयोंके भी सूक्ष्म दिव्य पाचों विषयोंका ग्रहण करने लगता है। अब उक्त षट्विभूतियों को पुरुष ज्ञान की प्राप्तिमें विघ्न कथन करते हैं: ॥३५॥

ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः ॥३६॥

उक्त प्रातिभादि सिद्धियें समाधि में विघ्न हैं; और व्युत्थान कालमें सिद्धियें हैं। योगीको समाधिके लिये तो ये छूनों सिद्धि नहीं किन्तु विघ्न हैं; इनमें अटक कर समाधि से वञ्चित रह जायगा; इस लिये दिव्यदर्शनादि चमत्कारोंमें मुग्धन होजाना चाहिये; प्रत्युत इन दिव्यदर्शनादिको भी त्यागना चाहिये, परन्तु व्युत्थान (समाधिसे जाग) होनेपर ये छुहों सिद्धियें जानों। "यहांतक संयम द्वारा सधने वाली ज्ञान विभूतियें कहीं, अब क्रिया द्वारा सधने वाली विभूति कहते हैं:—

बन्ध कारण शैथिल्यात्प्रचार संवेदनाच्च चित्तस्य पर शरीरावेशः ॥ ३७ ॥

चित्तके बन्धनका कारण शिथिल होनेपर और प्रचार=मार्ग का भेद खुल जानेसे पर शरीरमें प्रवेश हो सकता है। चित्त व्यापक होकर भी जो एक शरीरमें बंधा है, उसका कारण

कर्म बन्धन है, जब समाधि में कर्म बन्धन ढीला हो जाता है अर्थात् जिस योगी ने संयम द्वारा धर्माधर्मरूप प्रारब्ध कर्मों को बन्धन करनेमें असमर्थ कर दिया है और चित्तके चलनेकी नाड़ियों से भले प्रकार विज्ञ हो गया है तो अपने चित्तको पर शरीरमें प्रवेश करा सकता है और फिर रानी मक्खी के पीछे जैसे मुहाल की अन्य मक्खियें उड़ जाती हैं वा उड आती हैं, वैसे चित्तके साथ इन्द्रियाँ भी पर शरीरमें चली जाती हैं और चित्त की आज्ञा का पालन इसी शरीरके समान करने लगती हैं। २१वीं विभूतिः—

'उदानं' जयाज्जलपङ्क कण्टकादिष्वसंग उत्क्रान्तिश्च ॥३८॥

उदान (वायु विशेष) के जीतनेसे जल, कीचड़ और झाड़ काँटे आदिमें फंसना नहीं होता और उत्क्रान्ति (स्वेच्छानुसार शरीर त्याग) होता है। उदान वायु शरीर, आकाश तथा अन्नादि की उर्द्धगतिका हेतु और ना सिकाके अग्रभागसे लेकर शिरपर्य्यन्त स्थिति है। जब योगी उसे जीतकर वश्य कर लेता है तब ऊपरको उछलनेकी शक्ति बढ़ जानेसे सूत्रार्थमें लिखे अनुसार उसमें शक्ति प्राप्त हो जाती है। अब २२ वीं विभूतिका अगला सूत्र बताता हैः—

समान जयाज्ज्वलनम् ॥ ३९ ॥

समान (वायु) के जयसे तेजस्वी हो जाता है। प्राण, अपान, उदान, 'समान' और व्यान इन पाँचमें जो प्राणके ही भेद हैं, चौथा समान है,वह नाभिमें स्थित है, जब योगी संयम द्वारा उसको जीत कर वशमें कर लेता है तब योगीका देह अग्निके समान तेजसे दहकने लगता है। अब २३वीं विभूति सुनियेः—

श्रोत्राकाशयोः सम्बन्ध संयमाद्दिव्यं श्रोत्रम् ॥ ४० ॥

श्रोत्रेन्द्रिय और आकाश तत्त्वके सम्बन्धमें संयम करनेसे दिव्यशब्द श्रवणशक्ति हो जाती है। ऐसेही त्वचा और वायुके सम्बन्धमें संयम करसे दिव्यस्पर्श, चक्षु और अग्निके सम्बन्ध

में संयमसे दिव्य दृष्टि, रसना और जलके सम्बन्धमें संयमसे दिव्य स्वादु और नासिका तथा पृथिवी तत्त्वके सम्बन्धमें संयम करनेसे दिव्य गंधको प्राप्ति होना जानिये, क्योंकि श्रोत्रेन्द्रिय और आकाशमें जैसे कार्य्य कारण सम्बन्ध हैं, वैसे ही त्वचा और वायु तत्त्वादिमें भी है। अब २४वीं बिभूति कहते हैं:—

कायाकाशयोः सम्बन्धसंयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाकाश गमनम् ॥४२॥

देह और आकाश (अवकाश) के सम्बन्धमें संयमसे और लघु (हलके) तूल (रुईके फोये) में समापत्ति (संयम द्वारा चित्तकी तदाकारता) से आकाशमें गमन (सिद्ध होता) है यह देह आकाशमें ही रहता और जाता आता भी है, इसलिये देहका आकाश (अवकाश) से व्याप्य व्यापक सम्बन्ध है। जब योगी इस सम्बन्धमें संयम करता है और जब हलके रूई के फोये आदि पदार्थोंमें संयम करके चित्तको तदाकार कर देता है, तब हलका होकर जलके ऊपर भूमिवत् चलता और मकड़ीके जाले तकके सहारे चल सकता और सूर्यकी किरणों तक पर चल कर आकाशमें यथेष्ट विचर सकता है, व्यास भाष्यका मत है। अब २५ वीं, बिभूतिका वर्णन करते हैं:—

बहिरकल्पिता वृत्ति र्महाविदेहा ततः प्रकाशोऽऽवरणक्षयः॥४३॥

शरीरके बाहर भीतर सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मामें बिना संकल्पके स्थित हुई चित्तवृत्तिका नाम महा विदेहा धारणा है, इस धारणाकी प्राप्तिसे बुद्धिके आच्छादिक क्लेशादिकोंका क्षय होजाता है। क्योंकि क्लेश कर्मादिका साधन मन है जब मनका देहसे बाहर निकाल देना योगीको संकल्पसे नहीं किन्तु स्वभावसे ही सिद्ध हो जावे तो फिर उसे क्लेश कर्मादि कैसे बांध सकते हैं। २६ वीं विभूतिः—

स्थूल स्वरूप सूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमाद् भूत जयः ॥४३॥

(पृथिव्यादि महाभूतोंके) स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय और अर्थवत्त्वमें संयम करनेसे (महा) भूत जयकी प्राप्ति होती है। पृथिवीके जैसे स्थूलादि ५ भेद हैं वैसे जलादिके भी ५। ५ भेद हैं। इस प्रकार ५ महाभूतों के ५।५ स्थूलादि भेद होकर २५ भेद हैं। पृथिवी आदि व्यक्तिका नाम स्थूल=कठिनता, स्नेह=गीलापन, औष्ण्य, गति तथा अनावरणता रूप धर्मों द्वारा अभिव्यक्त होने वाले पृथिवीत्व आदि सामान्य विशेषका नाम "स्वरूप" पृथिवी आदि भूतोंके कारण गन्धादि पञ्च तन्मात्रोंका नाम "सूक्ष्म" पृथिवी आदिमें कारण रूपसे अन्वित गुणत्रयका नाम "अन्वय" भोगापवर्गार्थताका नाम "अर्थवत्त्व" और भूतोंको स्वाधीन कर लेनेका नाम "भूत जय" है। जो योगी पृथिवी आदि महाभूतोंके स्थूल, स्वरूप सूक्ष्म, अन्वय तथा अर्थवत्त्व इन पाँच प्रकारके रूपोंमें संयम करता है उसको भूतजय नामक विभूति प्राप्त होती है। जिनसे वह इनके उपयोगसे नाना प्रकारके कार्य्योंको सम्पादन कर सकता है। अब भूत जयका फल कथन करते हैं:—

ततोऽणिमादिप्रादुर्भावःकायसम्पत्तद्धर्मानभिघातश्च॥४४॥

तब अणिमादिका प्रादुर्भाव और देहकी संपदा (ऐश्वर्य) और उन (५ भूतों) के धर्मोंसे अनभिघात (चोट न लगना) होता है। अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशित्व, ईशितृत्व तथा यत्रकामा वसायित्व, इन आठ सिद्धियोंका नाम "अणिमादि" प्राप्तिका नाम "प्रादुर्भाव" देह ऐश्वर्यका नाम "काय सम्पत्" कठिनता, स्नेह, उष्णता, गति और अनावरणता इन भूतधर्मोंके साथ प्रतिकूल सम्बन्ध न होनेका नाम "तद्धर्मानभिघात" है। देहको सूक्ष्म कर सकना "अणिमा" देहको बोझमें हलका कर सकना "लघिमा" देहको फैलावमें बढ़ाकर सकना "महिमा" इष्ट पदार्थको समीप प्राप्तकर सकना "प्राप्ति" ये चार सिद्धि वा विभूतियाँ पाँच २ महाभूतोंके स्थूल

रूपमें संयमसे उत्पन्न होती हैं। इच्छाका पूरा होना "प्राकाम्य" उसमें रूकावट न होना, यह 'स्वरूप' संयमका फल है। महाभूतों और पाञ्चभौतिक प्राणियोंका वशमें कर सकना "वशित्व" यह 'सूक्ष्म' रूपमें संयमका फल है। ऐश्वर्य सम्पादन करने की सामर्थ्य का "ईशितृत्व" यह "अन्वय" संयम का फल है। जो संकल्प करे सो पूरा हो "यत्रकामा वसायित्व" यह "अर्थवत्व" संयमका फल है। भोजवृत्तिमें ९वीं भारी हो सकना नाम की भी विभूति "गरिमा" बताया है। "कायसंपत्" का ब्योरा ४५ वें सूत्रमें है। पृथिवी आदि भूतोंके कठिनता आदिका योगीके कामोंमें विघ्न न कर सकना "तद्धर्माऽनभिघात" नामकी विभूति है। भाव यह है कि जिस योगीको पृथिवी आदि भूतोंका वशीकार हो गया है उसको इनसे यथोपयोग कार्य लेनेके समय कठिनतादि धर्मोंका प्रतिबन्ध नहीं होता और इनका प्रतिबन्ध न होनेसे निर्विघ्नता पूर्वक प्रवृत्त हुआ योगी सब कार्य्योंको सहजमें ही सिद्ध कर लेता है। अब कायसम्पत्का निरूपण करते हैं:—

रूपलावण्य बल वज्र संहननत्वानि कायसंपत् ॥४५॥

रूप, लावण्य, बल तथा वज्र संहननत्व इन चारोंका नाम नाम कायसंपत् है। दर्शनीय सुखाकृतिको उत्तम होना "रूप" और सर्वाङ्ग सुन्दर होना "लावण्य" और वज्र (हीरा आदि) के तुल्य शरीरावयवोंको दृढ़ (मजबूत) होना "वज्र संहननत्व" कहाता है। ये चारों देह ऐश्वर्य भूत जयी योगीको प्राप्त होते हैं। अब तक ग्राह्य पदार्थोंके संयमकी सिद्धियाँ (विभूतियाँ) कहीं, आगे ग्रहण=साधनोंके संयमकी सिद्धियाँ निरूपण करते हुए कहते हैं:—

ग्रहण स्वरूपास्मितान्वयार्थवत्व संयमादिन्द्रिय जयः॥४६॥

ग्रहण, स्वरूप, अस्मिता, अन्वय और अर्थवत्वमें संयम करने से इन्द्रिय जीते जाते हैं। चक्षुरादि इन्द्रियोंकी देखना आदिवृत्तियें=१ ग्रहण, गोलकादि बनावट स्थूल है=२स्वरूप

उनके कारण सात्विक अहङ्कार = ३ अस्मिता, उस अहङ्कार के साथके साथ लगे हुये ३ गुण = ४ अन्वय, और उन ३ गुणोंके साथ लगे भोग मोक्षार्थ वालापन = ५ अर्थवत्व कहाते हैं। इनमें संयम करने से इन्द्रिय वशमें हो जाते हैं ॥४६॥

अब इन्द्रिय जयका फल कथन करते हैं:—

ततोमनोजवित्वं विकरणभाव: प्रधान जयश्च ॥४७॥

इन्द्रिय जयसे मनोजवित्व विकरण भाव और प्रधान जय की प्राप्ति होती है। मनके समान देहमें वेग अर्थात् शीघ्र गामित्वको १ — मनोजवित्व कहते हैं। देह से बाहर इन्द्रियों को भेज सकना २ — विकरणभाव और प्रकृतिके समस्त कार्य पदार्थों को स्वाधीन कर लेना ३ — प्रधान जय है, ये ३ सिद्धि वा विभूति मिलकर "मधु प्रतीक" इस लिये कहाती हैं कि जैसे शहद के एक देश में भी सर्व देशके समान स्वाद आता है वैसे इनमें सर्वत्र सब इन्द्रियोंसे स्वाद लेनेकी शक्ति हो जाती है। "ग्रहण" में संयम का फल = मनोजवित्व, "स्वरूप"में संयम का फल = विकरण भाव और "अस्मिता, अन्वय और अर्थवत्व" में संयम का फल = प्रधान जय है ॥४७॥

ग्राह्य पदार्थोंके संयमका फल कहकर, आगे ग्रहीताओं में संयमका फलकहते हैं:—

सत्व पुरुषान्यताख्यातिमात्रस्यसर्वभावाधिष्ठातृत्वंसर्व ज्ञातृत्वंच ॥४८॥

सत्व और पुरुष के भेद ज्ञान का (फल) सर्वभावोंका अधिष्ठाता होना और सर्वज्ञ होना है। तात्पर्य यह है कि जो योगी दृढ़ अभ्यास द्वारा आत्मज्ञानमें स्थित चित्त हुआ प्रति क्षण परमात्मानन्दका अनुभव करता है वह प्राणीमात्रका पूजनीय तथा सर्व पदार्थोंका ज्ञाता हो जाता है ॥४८॥

अब विवेक ज्ञानका मुख्यफल कथन करते हैं:—

तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ॥४९॥

जब उसमेंभी वैराग्यसे दोषोंके बीजका क्षय हो जावे तब कैवल्य (मुक्ति) हो जाती है। पर वैराग्यका नाम "वैराग्य"

अविद्यादि पाँच क्लेशोंका नाम "दोष" और उनके संस्कारोंका नाम "दोष बीज" है। इनसे उक्त क्लेश उत्पन्न होते हैं, जब योगीको विवेक ख्यातिमें भी वैराग्य उत्पन्न हो जाता है तब इसके चित्तमें अनादिकालसे रहने वाले अविद्यादि क्लेशोंके संस्कार सर्वथा क्षय हो जाते हैं. उनके क्षय होनेसे योगीको सहज हीमें असम्प्रज्ञात समाधिकी प्राप्ति हो जाती है और उसकी प्राप्ति होनेसे वह मुक्त हो जाता है ॥४६॥

अब कैवल्यके साधन समाधिमें प्रवृत हुए योगीको भावी विघ्नोंकी निवृत्ति का उपदेश करते हैं:--

स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाऽकरणं पुनरनिष्ट प्रसङ्गात्॥५०

स्थानधारी महान् पुरुषोंके निमन्त्रण करनेपर संग तथा स्मय नहीं करना चाहिये. इसलिये कि उसके करनेसे अनिष्ठ की प्राप्ति होती है। प्रीतिका नाम "संग" और गर्वका नाम "स्मय" है। महान् पुरुषों के निमंत्रण से गर्व और प्रीति करने के कारण योग भ्रष्ट हुआ योगी पुनः जन्म मरण रूप संसार दुःख को प्राप्त होता है। अब ४३ वीं विभूति विवेकज ज्ञान का वर्णन करते हैं:—

क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम् ॥ ५१ ॥

क्षण और क्षणोंके क्रम में संयम करने से विवेकज ज्ञान होता है। जैसे परमाणु सब से छोटा है वैसे काल का सबसे छोटा भाग जिसके फिर भाग न हो सकें उसको यहां योगशास्त्र में क्षण माना है। (एक जीवात्मा और दूसरे परमात्मा इन दो चेतनों को छोड़कर) क्षण २ परिणामी (बदलने वाले) हैं, इसलिये जब योगी काल के सब से छोटे भाग क्षण और क्षणों के क्रम में संयम करता है तो क्षण और क्षण क्रममें बदलने वाले सब परिणामी पदार्थों को बदलना जानकर उसको आत्मा और अनात्मा वा जड़ चेतन के विवेक से विवेकज ज्ञान हो जाता है। अब विवेकज ज्ञान का फल कथन करते हैं:—

जातिलक्षणदेशैरन्यताऽनवच्छेदात्तुल्ययोस्ततः प्रतिपत्तिः ॥ ५२ ॥

जाति, लक्षण और देश से भिन्नता का निश्चय न कर सकने से दो तुल्य पदार्थों में भी विवेकज ज्ञान से भिन्नता का ज्ञान हो जाता है। हमलोग एक पदार्थ को दूसरे से भिन्न समझने में जाति, लक्षण और देश का सहारा लेते हैं। गौ और घोड़े में भेद का निश्चय जाति से होता है, दो गौवों में भेदका निश्चय कपिलत्वादि लक्षण से होता है और दोनों गौ कपिलत्वादि लक्षणों में भी तुल्य हों तो देश (पूर्व पश्चिम आदि) से भेद की पहिचान होती है। पर जब साधारण जन जाति लक्षण और देश से भी पदार्थों को एक दूसरे से अन्यता (भिन्नता) को न जान सकें तब पूर्वोक्त विवेकज ज्ञान से योगी यहांतक जान सकता है कि एक परमाणु से दूसरे परमाणु में भी क्या भिन्नता है। अब विवेकज ज्ञान का भी लक्षण बताते हैं:-

तारकंसर्वविषयंसर्वथाविषयमक्रमंचेतिविवेकजंज्ञानम्॥५३॥

अपने आप उपजे हुवे, सब को विषय करने वाले, सब प्रकार से विषय करने वाले और क्रमनिरपेक्ष ज्ञानों को विवेकज ज्ञान कहते हैं। जब योगी क्षण और क्षणों के क्रम में संयम करता है तब उसको उनका साक्षात्कार हो जाने से एक ही काल में अतीत (भूत) अनागत (भविष्यत्) तथा वर्त्तमान सम्पूर्ण पदार्थों को विषय करने वाला विना उपदेश के अपनी प्रतिभा से जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसका नाम विवेक ज्ञान है।

द्र:—यहांतक विभूति वा सिद्धियां कहीं, पर योगी को इन सिद्धियों की प्राप्ति श्रद्धा बढ़ाने मात्र के लिये कही गई—हैं वास्तव में तो दुःख रहित मुक्ति पद पाना ही प्रत्येक मनुष्य को योग द्वारा इष्ट है, इसलिये इनसब विभूतियों से वैराग्य करके इनसब उपायों से बुद्धिसत्व और आत्मा (पुरुष) को एक सा शुद्ध निर्मल करना चाहिये, सो आगे कहते हैं:—

सत्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम ॥ ५४ ॥

सत्व और पुरुष की शुद्धि समान होनेपर कैवल्य (मोक्ष)

होता है। भाव यह है कि विवेक ख्याति के उदय होने से संसारके हेतु क्लेश बीज जब क्षय हो जाते हैं तब बुद्धि पुरुष के समान शुद्धि कही जाती है और अविवेक दशा में बुद्धि के द्वारा होने वाले भोगकी जब निवृत्ति हो जाती है तब पुरुष की शुद्धि कही जाती है, इस प्रकार जब योगी को उक्त दोनों शुद्धियें प्राप्त हो जाती हैं तब वह मुक्त हो जाता है। इसलिये कैवल्याभिलाषी योगियोंको विवेक ख्यातिका ही सम्पादन करना आवश्यक है।

॥ इति योगदर्शन भाषानुवादे विभूतिपादस्तृतीयः ॥

ओ३म्

अथ चतुर्थ कैवल्यपादः प्रारभ्यते

प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय पाद में योग, योग के साधन और योग की विभूतियों का विस्तारपूर्वक निरूपण किया, अब इस चतुर्थ पाद में कैवल्य का निरूपण करते हुए कैवल्य (मुक्ति) योग्य चित्त के निर्णयार्थ पांच प्रकार के सिद्ध चित्तों का कथन करते हैं:—

जन्मौषधि मंत्र तपस्समाधिजाः सिद्धयः ॥ १ ॥

जन्म, औषधि, मंत्र, तपस्, और समाधि से उत्पन्न हुई पांच प्रकार की सिद्धियें हैं। १—सिद्धि जन्म से उत्पन्न होती है, जैसे पक्षी आदि जन्म से आकाश में उड़ना आदि सिद्ध को प्राप्त हैं। २—सिद्धि औषधि खाने से होती है, जिसके कायकल्प पर्य्यन्त अनेक भेदों का वर्णन वैद्यक शास्त्रका विषय है। ३—सिद्धि मंत्र के जप से होती है। जिसमें "तज्जपस्तदर्थ भावनम्" यो० द० पा० १ सू० २८ और "स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोगः" यो० द० पा० २ सू० ४४ के अनुसार सिद्ध होती हैं। ४—तप स सिद्धि होती है, जिसका वर्णन "कायेन्द्रिय सिद्धि" पा० २ सू० ४३ में किया गया है। और ५ वीं सिद्धि समाधि से होती है, जिसका वर्णन समस्त विभूतिपादमें किया गया है। भाव

यह है कि चित्त सिद्धि के यह पांच प्रकार हैं इन प्रकारोंसे योगी का चित्त सिद्ध हो जाता है और चित्त की सिद्धि होने से उसके शरीर तथा इन्द्रियों में दिव्य सामर्थ्यकी प्राप्ति होती है। पूर्वोक्त साधनोंसे शरीर तथा इन्द्रियें पूर्वसे विलक्षण कैसे हो जाते हैं ? उत्तरः—

जात्यन्तर परिणामः प्रकृत्यापूरात् ॥ २ ॥

प्रकृतिके चारो ओरसे आभरनेसे जात्यन्तरकेसा परिणाम होजाता है। भाव यह है कि चित्त और इन्द्रियोंकी प्रकृति जो अहङ्कारादिक हैं उनमें अन्य प्रकृतिके अवयवोंकी आरम्भ कर देना जात्यन्तर परिणाम कहलाता है अर्थात् शरीरका औषधि से और चित्त तथा इन्द्रियोंका स्वाध्यायादि संस्कारों से परिवर्त्तन हो जाता है। तो क्या औषधि सेवनादि निमित्त प्रकृतियों के प्रेरक हैं ? कि वे बाहरसे अन्य प्रकृतियोंको खींच-कर देहमें प्रविष्ट करादें ? उत्तरः—

निमित्तमप्रयोजकंप्रकृतीनांवरणभेदस्तु ततःक्षेत्रिकवत् ॥३॥

प्रकृतियोंका प्रयोजक (प्रेरक) तो निमित्त ? (औषधि सेवनादि) नहीं है परन्तु उस (औषधि सेवनादि समाधि पर्य्यन्तसे वरण भेद (प्रतिबन्धक) अवश्य होता है, किसानके समान। जैसे किसान (कृषक) एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमें जल ले जानेके लिये जलके प्रति बन्धक (बाढ़) को तोड़ देता है तब वह जल स्वयं अन्य क्षेत्रमें पहुंच जाता है, इसी प्रकार उक्त पांच प्रकारोंसे चित्तकी सिद्धि होनेके लिये धर्म केवल विघ्नोंको हटाता है, विघ्नोंके दूर होनेसे उक्त सिद्धियोंका यह स्वभाव है कि वह चित्त और इन्द्रियोंके जन्मको बदल देती है। यहां परिवर्त्तन होनेके अर्थ चित्तका स्वभाव और इन्द्रियों के सामर्थ्य बदल जानेके हैं न कि योगीके शरीर बदल जानेके, यदि जात्यन्तर परिणाम शब्दसे शरीरके परिवर्तन होनेका अभि-प्राय लिया जाय तो पूर्वोक्त सब कर्म निष्फल हो जाते हैं। यह दोष तो चित्तके परिवर्त्तन होनेमें भी समान है ? उत्तरः—

निर्माण चित्तान्यस्मितामात्रात् ॥ ४ ॥

अस्मिता (अहन्तत्त्व) मात्रसे निर्माण चित्तोंको (उत्पन्न करता है)। तप स्वाध्यायादि साधनोंसे चित्तको सिद्ध करनेके अर्थ नूतन उत्पन्न करनेके नहीं किन्तु पूर्व सिद्ध चित्तको सुधार लेनेके हैं और जो प्रकृत्यापूरसे चित्तका निर्माण करना कथन किया गया है वह उपचारसे है वास्तव नहीं। अर्थात् योगी अस्मिता मात्र (केवल अहंतत्व जो चित्तोंका उपादान कारण है) से अनेक चित्तोंको उत्पन्न कर लेता है ॥ ४ ॥

और तबः—

प्रवृत्ति भेदे प्रयोजकं चित्तमेक मनेकेषाम् ॥ ५ ॥

अनेक चित्तोंकी जाने आने रूप क्रिया में एक चित्त प्रेरक होता है। अर्थात् ४ थे सूत्र के अनुसार अहंतत्त्वसे योगी अनेक चित्त उत्पन्न करके उनको अपने चित्त कृत प्रेरणासे भिन्न २ विषयों में प्रेरित करता है। जिस प्रकार पृथिवी खाद जल और वायु में रहे हुये गेहूँ उत्पन्न करने वाले त्रसरेणुओंसे एक गेहूँका बीज अनेक बीजोंको उत्पन्न करता है, उसी प्रकार वायुके साथ रमेंहुवे अहंतत्त्वसे योगी का चित्त अनेक अन्य चित्तोंको उत्पन्न करके स्वयं उनका प्रेरक बन जाता है ॥ ५ ॥

तत्र ध्यान जमनाशयम् ॥ ६ ॥

पांच प्रकारके चित्तों मेंसे ध्यान=समाधि रूपसिद्धिसे सिद्ध चित्त क्लेशादि वासनाओं से रहित हुआ कैवल्यका उपयोगी होता है। अर्थात् उन ५ प्रकार=१ जन्म, २ औषधि, ३ मंत्र, ४ तप और ५ समाधिसे उत्पन्न हुवे चित्तो मेंसे ध्यानोत्पन्न (समाधिसे उत्पन्न) चित्तमें आशय (क्लेशवासना और कर्म वासना) नहीं होते, इसलिये कैवल्य (मुक्ति) के लिये ध्यानज चित्तकी प्रशंसा है। (प्रश्न) तो क्या योगी कर्म शून्य होजाता है ? (उत्तर) नहीं, किन्तुः—

कर्माऽशुक्लाऽकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ॥ ७ ॥

योगीके कर्म अशुक्ला कृष्ण होते हैं और योगीसे भिन्न

पुरुषोंके कर्म तीन प्रकारके होते हैं। [योगीका कर्म निष्काम होनेसे नतो पुण्यमें। गिना जावे, न पाप में। परन्तु अन्योंके कर्म तीन प्रकारके होते हैं १ शुक्ल=पुण्य, २ अशुक्ल वा कृष्ण= पाप, और ३ शुक्ल कृष्ण=पुण्य पाप मिश्रित। इनमेंसे १—तपः स्वाध्यायादि सात्त्विक कर्म पुण्य है।२-ब्रह्महत्यादि तामस कर्म पाप हैं। और ३-रजोगुणी कर्म राज्यादि पालन जिसमें किसी पर अनुग्रह, किसी पर निग्रह (ताड़न वा बन्धन) करके काम चलाया जाता है=पुण्य पाप मिश्रित है। (प्रश्न) तो ऐसे मिश्रित कर्मोंसे मनुष्य जन्म कैसे हो सकता है? (उत्तर):—

ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाऽभिव्यक्तिर्वासनानाम् ॥ ८ ॥

उक्त तीन प्रकारके कर्मों मेंसे मनुष्य जन्मके फल देनेके लिये अभिमुख जो वासनायें हैं उन्हींकी प्रकटता मनुष्य जन्मके लिये होती है इतर तिर्यक जन्मके देने वाली वासनाओं को नहीं। यद्यपि उक्त तीनों प्रकारके कर्मों में तिर्यक योनि देने वाले कर्म भी सम्मिलित हैं परन्तु जिस २ योनिके कर्मोंका आधिक्य होता प्रथम वही जन्म होते हैं इस लिये कर्मोंके मिश्रित होनेसे भी कोई दोष नहीं आता। जन्म लेतेही अपनी जाति (मनुष्यत्वादि) के अनुसारही स्तन्यदुग्धपानादि भोग भोगने लगता है। ऊँटका बच्चा कांटेही चाबने लगता है। बिल्लीका बच्चा चूहों पर झपटने लगता है, तथा मछली तिरने और अपना भोग भोगने लगती है। (प्रश्न) जब एक वा कई मनुष्य जन्म होचुके तो तिर्यक जन्म देनेवाले कर्मोंमें बहुत अन्तर पड़ गया फिर वह तिर्यक जन्मके कैसे ?(उत्तर :-

जातिदेश काल व्यवहिता नामप्यानन्तर्यं स्मृति संस्कार यो रेक रूपत्वात् ॥ ९ ॥

जाति देश और कालसे व्यवधान (फासला) पाई हुई (वासनाओं) में भी निरन्तरता रहती है, (क्योंकि) स्मृति और संस्कार के एकसा होनेसे। (प्रश्न) शरीर प्रथम

होतो उससे कर्म उत्पन्न हो कर उनकी वासनाएं बनें और प्रथम वासनाएं होंतो उनसे शरीर बनें, यह अन्योऽन्याश्रय दोष वासनाओं से जन्म मानने में आता है ? (उत्तर) :—

तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात् ॥१०॥

उक्त वासनाओं का अनादिपन जीने की इच्छा के नित्य होनेसे पाया जाता है । अर्थात् बीजसे अंकुर अंकुर से बीज यह अनादि प्रवाह है, इसीप्रकार वासनाओं से जन्म, जन्म से वासना अनादि प्रवाह है । सबसे पहला जन्म कोई नहीं इस लिये सबसे पहली कोई वासना नही कही जासकती, इस कारण वासनाओं को अनादित्व है । (प्रश्न) वासना अनादि हैं तो उनका अभाव कैसे हो सकता है ? (उत्तर)—

हेतु फलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वादेषामभावे तदभावः॥११॥

(वासनायें)हेतु,फल,आश्रय और आलम्बन से संग्रहीत होती हैं इस कारण उन (हेतुआदि४) के अभाव होनेपर उन(वासनाओं) का अभाव हो जाता है। वासनाओं का मूल कारण अविद्या है, उस का नाश हो जाने से वासनाओं का स्वयं नाश होजाता है क्योंकि अविद्या रूपी दण्ड से यह षट् (धर्म, अधर्म, सुख, दुख, राग, द्वेष) अरों वाला संसार चक्र भ्रमण करता है अर्थात् प्रथम जीवको धर्म से सुख तथा अधर्म से दुःख, फिर सुख से सुख और उसके साधनों में राग और दुःख से दुःख तथा उसके साधनों में द्वेष फिर राग द्वेष से प्रयत्न=शरीर की चेष्टा होना, चेष्टासे पर पीडा तथा पर अनुग्रह होना और उससे धर्माधर्म उत्पन्न होते हैं और उनसे फिर सुख दुःख तथा सुख दुःख से फिर राग द्वेष होता है । (प्रश्न) योग शास्त्री लोग तो सत्कार्य वादी हैं, वे अभाव से भाव वा भावसे अभाव नहीं मानते, फिर वासनाओंका नाश कैसे हो सकताहै ?(उत्तर):-

अतीताऽनागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदात्धर्माणाम् ॥ १२ ॥

महत्तत्वादि पदार्थों के काल भेद से भूत भविष्यत् वस्तु अपने स्वरूप से विद्यमान् रहती है । अर्थात् वस्तु के स्वरूप

का सर्वथा नाश नहीं होता अतएव वर्तमान् अवस्था से अतीत (भूतकाल) अवस्था को प्राप्त होना ही वासनाओं का नाश है, इस प्रकार योग के सत्कार्य वाद की हानि नहीं। अब उक्त धर्मों की गुण रूपता कथन करते हैं:—

तेव्यक्त सूक्ष्मा गुणात्मनः ॥ १३ ॥

(व्यक्तसूक्ष्मा) भूत, भविष्यत्, वर्तमान रूप जो अनेक प्रकार के पदार्थ हैं वह सब तीनों गुणों का स्वरूप हैं। अर्थात् सत्व, रज, तम नाम ३ गुणों से जितना कार्य प्रपञ्च महत्तत्त्वादि रूपमें परिणत होकर भूत-भविष्य वा वर्तमान् अवस्था में है वह व्यक्त और सूक्ष्म दो भेद वाला है। जब वर्तमान् हो तब व्यक्त (प्रकट) कहाता है, और जब भूत व भविष्यत् हो तब सूक्ष्म कहाता है। (प्रश्न) तीनो गुणों के कार्य्यों में यह पृथिवी है, यह जल है इस प्रकार की एकता रूप कैसे ? (उत्तर):-

परिणामैकत्वाद्वस्तु तत्त्वम् ॥ १४ ॥

परिणाम की एकता से वस्तुओं की एक रूपता पाई जाती है। जैसे वत्ती, तैल, अग्नि इन तीनों से मिलकर सिद्ध हुए दीपक में एकोऽयं दीपः = यह एक दीपकहै, ऐसा व्यवहार होता है, इसी प्रकार एक संख्या की भांति परस्पर अङ्गाङ्गि भाव से मिले हुए तीनों गुणों के एक परिणाम को एका पृथिवी = यह एक पृथिवी है, तथा एक जलम् = यह एक जल है, इस प्रकार एकत्व की प्रतीति होती है। यहां इतना स्मरण रहे कि सत्व प्रधान गुणों का इन्द्रिय रूप से और तम प्रधान गुणों का विषय रूप से एक परिणाम है। (प्रश्न) कोई पदार्थ भी एक रस स्थिर नहीं सब क्षण एक हैं और विज्ञान स्वरूप हैं फिर प्रकृति पुरुष का नित्यत्व कैसे ? उत्तरः—

वस्तु साम्ये चित्त भेदात्तयो र्विभक्तः पन्थाः ॥ १५ ॥

पदार्थ के एक होनेपर भी ज्ञान के अनेक होने से दोनों का भिन्न मार्ग है। जैसेः—एक स्त्री रूपवस्तु में पतिको सुख, सपत्नीके चित्त को दुःख और सन्यासीके चित्तको वैराग्य होता

है तो स्त्री रूपस्तु यदि चित्त से भिन्न सद्रूप न होती तो अनेक चित्तों वाले पति, सपत्नी और सन्यासी को सुख, दुःख और वैराग्य भिन्न २ न होते। इससे पाया जाता है कि चित्त और स्त्री आदि ज्ञेय वस्तु एक नहीं। यदि कहो कि वस्तु केवल एक चित्त के अधीन ही हो जाता है, अनेक चित्तों के नहीं। सो नहीं बनताः—

नचैक चित्त तन्त्रं वस्तु, तदप्रमाणकं तदाकिं स्यात् ॥१६॥

वस्तु एक चित्त के ही अधीन नहीं, जब कि उस (वस्तु) में प्रमाण=चित्त न लगा रहे तब क्या हो ? यह कहना ठीक नहीं कि वस्तु एक चित्त के अधीन है, क्योंकि हम देखते हैं कि एक समय चित्त एक वस्तु को ग्रहण करता है दूसरे समय उस वस्तु को छोड़कर अन्य में लग जाता है, तो क्या जब चित्त दूसरी वस्तु में जा लगा तब पहली वस्तु अप्रमाण है ? अर्थात् विना चित्त के हैं ? यदि नहीं तो अन्यों को वही वस्तु क्यों उपलब्ध होती है ? यदि है तो क्या है ? बस मानना पड़ेगा कि चित्त से अर्थ (चित्त का विषय घट पट स्त्री पुत्रादि) भिन्न हैं, चित्त ही का विकार मात्र नहीं। इसी से शंकरमतानुयिका दृष्टि सृष्टि वाद भी सूत्रकारके तर्कोंसे खण्डित हुवा ॥ अब वाह्यवस्तु विषयक कभी ज्ञान होना और कभी न होना, इसका कारण कथन करते हैंः—

तदुपरागापेक्षित त्वाच्चित्तस्य वस्तु ज्ञाताऽज्ञातम् ॥ १७ ॥

वाह्य पदार्थ कभी ज्ञात होता है और कभी अज्ञात होता है वह चित्त के उस वस्तु विषयक सम्बन्ध की अपेक्षा रखनेसे होता है। अर्थात् जिस समय विषयका चित्त के साथ इन्द्रियों द्वारा सम्बन्ध होता है तब वह ज्ञान होता है और अन्य समय अज्ञात होता है। चित्तसे भिन्न विषयों को स्थापन करके चित्तको परिणामी कथन किया, अब आत्मा को चित्त से भिन्न अपरिणामी कथन करते हैंः—

सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोःपुरुषस्याऽपरिणामित्वात् ॥१८॥

(परन्तु) चित्त की वृत्तियें सदा ज्ञात रहती हैं क्योंकि

उस (चित्त) का प्रभु पुरुष (जीवात्मा) परिणामी नहीं। जैसा कि अहं सुखी, अहं दुःखी, इत्यादि स्थलों में कदापि यह सन्देह नहीं होता कि मैं सुखी हूँ अथवा नहीं, इससे पाया गया कि परिणामी चित्त से भिन्न आत्मा पुरुष अपरिणामी है। अब यह शङ्का होती है कि चित्त ही स्वतः प्रकाश है और वह क्षणिक है उससे भिन्न अपरिणामी पुरुष कोई नहीं ? उत्तरः—

नतत्स्वाभासं दृश्यत्वात् ॥ १९ ॥

जड़ होने के कारण वह चित्त स्वयं प्रकाश नहीं है। इससे जाना जाता है कि अपरिणामी स्वयं प्रकाश चेतन आत्मा चित्त से भिन्न है, चित्त स्वयं आत्मा नहीं। अब विज्ञानवादी के मत में और दोष कहते हैं:—

एक समये चोभयाऽनवधारणम् ॥ २० ॥

और एकही काल में चित्त और विषय का ग्रहण नहीं हो सकता। चित्त को स्वभासक तथा विषयाभासक मानने से क्षणिक विज्ञानवादी के मत में चित्त तथा विषय का एकही काल में प्रकाश होना युक्ति विरुद्ध है। अब चित्त के प्रकाशक अन्य चित्त मानने में दोष कहते हैं:—

चित्तान्तर दृश्ये बुद्धि बुद्धेरति प्रसङ्गः स्मृति सङ्करश्च॥२१॥

यदि एक चित्तको चित्तान्तर (अन्यचित्त) का दृश्य मानें तो चित्तका चित्त मानना रूप अनवस्था दोष होगा और स्मृतियों को संकर (एकमेक) हो जायगा। अतएव एक अपरिणामी आत्मा माननाही ठीक है। क्योंकि एक कालमें अनेक भिन्न विषयक स्मृति होंगी तो इन्द्रियों की प्रवृत्ति किस चित्तकी किस स्मृतिके अनुकूल होगी ? स्मृतिमें परस्पर टक्कर खायेंगी और इन्द्रियें अपने काममें प्रवृत्त न हो सकेंगी। अब यह कहते हैं कि आत्मा किस प्रकार चित्तको प्रकाशित करता है:—

चितरप्रति संक्रमायास्तदाकारापत्तौस्वबुद्धि संवेदनम् ॥२२॥

इन्द्रियों की भाँति विषयोंके सम्बन्धसे रहित चेतन स्वरूप पुरुष स्वसम्बन्ध वाले चित्तके समानाकार को प्राप्त होकर अपने चित्तको प्रकाशता है। जैसे:—शुद्ध स्फटिकमणि को

बीचमें रखकर तीन ओर तीन रंगके पुष्प रख दो तो चौथी ओर जिधर कोई पुष्प नहीं है उधरसे स्फटिकमणि शुद्ध श्वेत निर्मल जान पड़ेगा, और नील पुष्पकी ओर उसकी छाया (झलक) से स्फटिक भी नीला जान पड़ेगा, और रक्तवर्ण पुष्पकी ओरसे रक्त प्रतीत होगा, तथा पीतवर्ण पुष्पकी ओरसे स्फटिक भी पीत समझ पड़ेगा, पर वास्तवमें स्फटिक स्वयं शुद्ध है, उसमें रक्त पीत नील कोई रङ्ग नहीं, ऐसे ही केवल पुरुषमें न वासना, न स्मृति, न कुछ है, किन्तु पुरुषमें जैसे चित्तकी समीपता होती है, वह तदाकार जान पड़ता है इसी से पुरुष अपने चित्तको ज्ञात करता है। अब चित्तके अनेक रूपताका निरूपण करते हैं:—

द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम् ॥ २३ ॥

चित्त विषय और पुरुष के साथ सम्बन्धवाला होनेसे अनेक रूप है। (प्रश्न) भोगकी हेतु भूत अनेक विचित्र वासनाओंसे चित्रित चित्तहीको आत्मा क्यों न मान लिया जावे? उनसे भिन्न भोक्ता पुरुष जो प्रसिद्ध नहीं, क्यों माना जावे? उत्तरः—

तदऽसंख्येयवासनाभिश्चित्रमपिपरार्थं संहत्यकारित्वात् ॥२४॥

वह (चित्त) अनगिनत वासनाओंसे चित्र (रंग विरंग।) भी परार्थ (पुरुषके लिये) है क्योंकि जुड़कर काम करनेवाला है। तात्पर्य यह है कि जिसके लिये चित्त भोग तथा मोक्ष सम्पादन करता है वह चित्तसे भिन्न भोक्ताही आत्मा है। पूर्वोक्त युक्तियों द्वारा चित्तसे भिन्न आत्माको सिद्ध करके अब विवेकी पुरुषकी कृत कृत्यता कथन करते हैं:—

विशेष दर्शिनः आत्मभाव भावनाविनिवृत्तिः ॥ २५ ॥

विवेकी पुरुषकी आत्मभाव भावना निवृत्त होजाती है। तात्पर्य यह है कि आत्माका साक्षात्कार होनेसे चित्त सम्बन्धि जन्मादिक विचित्र परिणामके निश्चयसे जन्मादि भावना की निवृत्ति द्वारा पुरुष कृत कृत्य होजाता है। अब विवेकी पुरुषके चित्त की अवस्थाका निरूपण करते हैं:—

तदा विवेक निम्नं कैवल्य प्राऽग्भारं चित्तम् ॥२६॥

जन्मादि भावनाकी निवृत्ति होनेसे चित्त विवेक मार्गको प्राप्त हुआ मोक्षकी ओर फिर जाता है। अब उस विवेकीके विघ्न और विघ्नोंके कारण बताते हैं:—

तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ॥२७॥

उस विवेक प्रत्ययके छिद्रोंमें संस्कारोंसे अन्य प्रत्यय होते हैं। जब २ उस विवेक (चित्त और देहादिसे पुरुषको भिन्न जानने) में छिद्र होते हैं अर्थात् बीच बीचमें जब जब वह विवेक शिथिल होकर छिद्र (विघ्न) को अवसर देता है तब तब पुराने संस्कारोंसे अन्य अविवेक प्रत्यय उत्पन्न होते हैं। उनके त्यागने वा उनसे बचनेका उपाय—

हानमेषां क्लेशवदुक्तम् ॥२८॥

उनका त्याग क्लेश (त्याग) के समान कहा गया। जैसे क्रिया योग द्वारा क्लेशोंके नाशका उपाय द्वितीयपादके आरम्भ सूत्रोंमें बताया है उसी प्रकार इन अन्य प्रत्ययोंके नाशका भी उपाय करें। अब संस्कारोंके नाशक प्रसंख्यानमें भी इच्छा न रखने वाले पुरुषको धर्ममेघ समाधिकी प्राप्ति कथन करते हैं: ॥२८॥

प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्यसर्वथाविवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः॥२९

विवेक ज्ञानमें भी फलकी इच्छासे रहित योगीके निरन्तर विवेक ज्ञानके उदय होनेसे धर्ममेघ समाधिकी प्राप्ति होती है। सम्प्रज्ञात समाधिके फल रूप विवेक ज्ञानकी परमसीमा का नाम "धर्ममेघ" समाधि है। जिसके संस्कारोंसे व्युत्थान संस्कार सर्वथा दब जाते हैं। इस धर्ममेघकी भी पराकाष्ठा ज्ञान प्रसाद है वा पर वैराग्य है। जिसमें निर्बीज समाधिको पाजाता है। अब धर्ममेघ समाधिका फल कहते हैं:—

ततः क्लेश कर्म निवृत्तिः ॥३०॥

तब (धर्ममेघ समाधिसे) वासना सहित अविद्यादि क्लेश तथा पुण्य पाप रूप कर्म निवृत्त हो जाते हैं। अब पूर्वोक्त समाधि सम्पन्न जीवनमुक्तके चित्तकी विलक्षणता निरूपण करते हैं:—

तदासर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्याऽनन्त्याज्ज्ञेयमल्पम्॥३१॥

अविद्यादि क्लेश तथा शुभाऽशुभ कर्मोंकी निवृत्ति कालमें अविद्यादि सब मलोंसे रहित हुए चित्तके अनन्त प्रकाशसे

सर्व विषय परिच्छिन्न हो जाते हैं अर्थात् कोई ऐसा पदार्थ नहीं रहता जिसको योगीका चित्त साक्षात्कार न कर सके। अब धर्ममेघ समाधि संपन्न योगीकेपुनर्जन्मका अभावकथन करतेहैं:-

ततः कृतार्थानां परिणाम क्रम समाप्तिर्गुणानाम् ॥३२॥

धर्ममेघ समाधिके उदय होनेसे कृत प्रयोजन हुए गुणोंके कार्योत्पादन रूप परिणाम क्रमकी समाप्ति होती है। अर्थात् जिस योगीके सत्वादि तीन गुण धर्ममेघ समाधिको उत्पन्न करके कृतकृत्य हो चुके हैं। उसके लिये पुनः देह इन्द्रियादि संघातको उत्पन्न नहीं कर सकते। तात्पर्य यह है कि धर्ममेघ समाधिकी प्राप्तिसे योगीका पुनर्जन्म नहीं होता अर्थात् ऐसे मुक्त पुरुषके लिये त्रिगुणात्मक प्रकृतिका सम्बन्ध नहीं रहता। केवल कैवल्य दशामें ब्रह्मानन्दानुभव रहता है। अबगुणोंके परिणामक्रमका निरूपण करते हैं ॥ ३२ ॥

क्षणप्रति योगी परिणामापरान्त निर्ग्राह्यः क्रमः ॥३३॥

क्षणोंके सम्बन्ध वाली तथा परिणामकी प्राप्ति से अनुमान करने योग्य गुणोंकी अवस्था विशेषको क्रम कहते हैं। जैसे सौवर्षकी मनुष्यकी आयुमें पहिले क्षणको पूर्वान्त और अन्तिम क्षणको अपरान्त कह सकते हैं। इस सूत्रमें परिणाम शब्दसे १ धर्म परिणाम २-लक्षण परिणाम और ३ अवस्था परिणामको एक द्रव्य परिणामके अन्तर्गत समझकर कहा गया है। अबगुणों की और उनके परिणामोंकी समाप्तिपर कैवल्यका लक्षण करके ग्रन्थ समाप्त करते हैं:—

पुरुषार्थ शून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूप प्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ॥३४॥

पुरुषार्थसे रहित बुद्धि आदि द्वारा परिणत गुणोंका अपने कारण में लय होनेको कैवल्य कहते हैं (वा) अथवा अपने शुद्ध स्वरूपमें प्रतिष्ठारूप चेतन स्वरूप पुरुषकी बुद्धिके सम्बन्धसे रहित होकर अपने स्वरूपमें स्थित होना कैवल्य है, (इति) शब्द शास्त्रकी समाप्तिका बोधक है।

॥ इति योगदर्शन भाषानुवादे चतुर्थः कैवल्यपादः समाप्तः ॥

* समाप्तश्चायंग्रन्थः *

(२) साधनपाद—इसमें क्रिया योग (Practical) है, इसमें ५५ सूत्र हैं।

(३) विभूतिपाद—इसमें योग का फल रूप विभूति तथा अष्ट सिद्धि का वर्णन है, इसमें ५४ सूत्र हैं।

(४) कैवल्यपाद—इसमें केवल मोक्ष का वर्णन समस्त पुस्तक का निचोड़ निगमन रीति पर वर्णित है, इसमें ३४ सूत्र हैं।

यद्यपि यह दर्शन बहुत छोटा है, तथापि सूत्रकारों की शैली के अनुकूल इसमें बड़े विशाल विषय का वर्णन है। योग एक दर्शन (Philosofi) है, जिसको जान कर तदनुकूल पूर्ण बर्ताव करने से मनुष्य मोक्ष तक प्राप्त कर सकता है, परन्तु यदि पूर्ण साधन न भी कर सके तो और योग के किसी एक भी अङ्ग का साधन कर पावे तो इस लोक में एक उत्तम पुरुष धार्मिक जीवन व्यतीत करने वाला अनेक दुःखों से जो चित्त के अव्यव स्थितत्वादि से होते हैं, बचनेवाला सुख से जीवन व्यतीत कर सकता है, अन्त को जन्मान्तर में भी अच्छे जाति, आयु और भोग पाता है और फिर उन जन्मान्तरों में योग का अभ्यास करता रहे तो "अनेक जन्म संसिद्धिस्ततो यान्ति परांगतिम्" अनुसार अनेक जन्मों की सिद्धियें पाता पाता अन्त में कभी मोक्ष पा जाता है।

यद्यपि योग शास्त्र पर कई एक ग्रन्थ भाषा में लिखे जा चुके हैं तथापि कई महानुभावों की संमति से वैदिक सिद्धान्तानुसार अपने अनुभव द्वारा योगाभिलाषियों के हितार्थ मैंने भी उक्त दर्शन के सूत्रों को भाषा में अनुवाद किया है। परम योगीश्वर सच्चिदानन्दानन्त स्वरूप से प्रार्थना है कि योग प्रचार में मुझे तथा अन्य योगाभ्यासियों को उत्साह देकर कृत कार्य करे। शमित्योम्।

अभयानन्द सरस्वती।

योग दर्शन की विषय सूची

॥ सवैया ॥

पाद समाधि है आदि विषे, इस में मनका सब संयम कीना।
पूरक, रेचक, कुम्भक से गति प्राण का साधन में गह लीना॥
पाद विभूति सुसंयम ने लघु, चेतन को सगरा बल दीना।
पाद तुरीय अनूप अहो जिसमें चिति वारिधि का रस पीना॥